छत्तीसगढ़ प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा
हिन्दी मासिक मुख पत्र
मास : श्रावण-भाद्रपद, संवत् 2074
अगस्त 2017

ओ३म्

अंक 143, मूल्य 10

अग्निदूत

अग्निं दूतं वृणीमहे. (ऋग्वेद)

स्वतन्त्रता दिवस एवं श्रावणी पर्व की
हार्दिक शुभकामनाएँ

श्रावणी सन्देश

श्रावणी आर्यों का प्रसिद्ध पर्वों में से एक महान पर्व है। यह पूर्णतः वैदिक पर्व है। इनका सम्बन्ध भी वेदाध्ययन एवं अध्यापन से है। गृह्यसूत्रानुसार इसी दिन चातुर्मास्य का उपाकर्म किया जाता था, जो निरन्तर वर्षा के चार मास तक चलता था। इसी आधार को लक्ष्य कर आर्यसमाज में भी वेदसप्ताह की परम्परा आरम्भ हुई। आर्यसमाज के संस्थापक प्रातः स्मरणीय महर्षि दयानन्द सरस्वती का दृढ मन्तव्य था कृण्वन्तो विश्वमार्यम् अर्थात् समस्त संसार को श्रेष्ठ बनाओ। श्रेष्ठ आचरण के बिना श्रेष्ठता आयेगी कहां से ? इनका आवश्यक मार्गदर्शन वेद से प्राप्त होगा। इसलिए उन्होंने दुनियां के लोगों से कहा था – वेदों की ओर लौटो, वेदों में समस्त मानवीय समस्याओं का समाधान है, क्योंकि इस धरती पर वेद ही ऐसे ज्ञान के आगार ग्रंथ है जो हमें निर्भ्रान्त बनाते हैं। वैदिक ज्ञान उदात्त एवं निर्मल होने से सांसारिक विक्षोभ एवं वैमनस्य की दुर्भावना से त्राण प्रदान कर सकते हैं। अतः वेद हमारे धर्म का मूलाधार है। श्रावणी का यह पावन पर्व वेदप्रचार की प्रेरणा प्रदान करता है, वेदानुसार जीवन जीने का मार्ग प्रशस्त करता है। अतः आर्यों आइए, हम संकल्पबद्ध होकर वेद के पावन सन्देशों को जन–जन तक पहुंचाने का बीड़ा उठाए।

आचार्य अंशुदेव आर्य
सभा प्रधान

अग्निदूत

हिन्दी मासिक

राष्ट्रीय, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक विचारों की मासिक पत्रिका

विक्रमी संवत् - २०७४
सृष्टि संवत् - १,९६,०८,५३,११९
दयानन्दाब्द - १९४

: प्रधान सम्पादक :
आचार्य अंशुदेव आर्य
प्रधान सभा
(मो. ०७०४९२४४२२४)

★

: प्रबंध सम्पादक :
आर्य दीनानाथ वर्मा
मंत्री सभा
(मो. ९८२६३६३५७८)

★

: सहप्रबंध सम्पादक :
श्री जोगीराम आर्य
कोषाध्यक्ष सभा
(मो. 9977152119)

★

: व्यवस्थापक :
श्री दिलीप आर्य
उपमंत्री (कार्यालय) सभा
मो. ९६३०८०१२५७

★

: सम्पादक :
आचार्य कर्मवीर
मो. ९७५२३८८२६७

पेज सज्जक :
श्रीनारायण कौशिक

- कार्यालय पता -
छत्तीसगढ़ प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा
दयानन्द परिसर, आर्य नगर, दुर्ग (छ.ग.)४९१ ००१
फोन : (०७८८) ४०३०९७२
फैक्स नं. : ०७८८-४०११३४२ ;
e-mail : chhattisgarhsabha@gmail.com

वार्षिक शुल्क-१००/- दसवर्षीय-८००/-

वर्ष - १३, अंक २ — ओ३म् — मास/सन् -अगस्त २०१७

श्रुतिप्रणीत-सिद्धधर्मवह्निरूपतत्त्वकं,
महर्षिचित्त-दीप्त वेद-सारभूतनिश्चयं ।
तदग्निसंज्ञकस्य दौत्यमेत्य सज्ञसज्ञकम् ,
सभाग्निदूत-पत्रिकेयमादधातु मानसे ।।

विषय - सूची

			पृष्ठ क्र.
१.	स्वामी से कौन नहीं मांगता ?	स्व. रामनाथ वेदालंकार	०४
२.	मजहब हमें सिखाता आपस में बैर रखना	आचार्य कर्मवीर	०५
३.	ईश्वर की सर्वव्यापकता	डॉ. बिजेन्द्रपाल सिंह	०८
४.	राष्ट्रधर्म के पुरस्कर्ता-श्रीकृष्ण	क्षितीश वेदालंकार	१०
५.	श्रावणी पर्व अविद्या के नाश तथा विद्या की वृद्धि करने का विश्व का एकमात्र मुख्य पर्व	मनमोहन कुमार आर्य	१२
६.	वैदिक ज्ञान बनाम आत्मज्ञान	आनन्द प्रकाश गुप्त	१४
७.	परस्परतंत्र	नरेन्द्र आहूजा 'विवेक'	१७
८.	महर्षि दयानन्द के मन्तव्य	खुशहालचन्द्र आर्य	१९
९.	आजादी कहें या स्वतन्त्रता	ऋषि कुमार आर्य	२१
१०.	यज्ञों के द्वारा जीवन को स्वर्गमय बनावें	डॉ. अशोक आर्य	२३
११.	अब करना होगा इनका इलाज	डॉ. रवि प्रभात	२५
१२.	हिमाचल के राजभवन में दो दिन	आचार्य ज्ञानेश्वरार्यः	२६
१३.	स्वामी समर्पणानन्द-व्यक्ति नहीं विचार	स्वामी विवेकानन्द	२८
१४.	छत्तीसगढ़ के पुरोधा-स्वामी दिव्यानन्द	दिव्य दर्पण	२९
१५.	लौकी (दूधी) के रस से नियमित सेवन से हृदय रोग पर काबू	विनोद कुमार सोनी	३०
१६.	होमियोपैथी से मूत्र ग्रन्थियों (किडनी) से उत्पन्न रोगों का उपचापर	डॉ. विद्याकान्त त्रिवेदी	३१
१७.	समाचार प्रवाह		३३

सूचना : छत्तीसगढ़ प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा का अणुसंकेत
(ई-मेल) E-mail : chhattisgarhsabha@gmail.com
(सम्पादक) E-mail : shastrikv1975@gmail.com

सूचना : हमारा नया वेब साइट देखें
Website : http:/www.cgaryapratinidhisabha.com

लेख में प्रकट किए विचारों के लिए सम्पादक उत्तरदायी नहीं है।

सम्पादक प्रकाशक मुद्रक - आचार्य अंशुदेव आर्य द्वारा छत्तीसगढ़ प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा, दयानन्द परिसर, आर्यनगर, दुर्ग के वैदिक मुद्रणालय से छपवाकर प्रकाशित किया गया।

स्वामी से कौन नहीं मांगता ?

भाष्यकार - स्व. डॉ० रामनाथ वेदालङ्कार

मा त्वा सोमस्य गल्दया, सदा याचन्नहं गिरा।
भूर्णि मृगं न सवनेषु चुकुधं, क ईशानं न याचिषत् ॥ ऋग्. ८.१.२०

ऋषिः **मैत्रावरुणिः मेध्यातिथी काण्वौ** । देवता **इन्द्रः** । छन्दः **वृहती** ।

● (हे इन्द्र परमेश्वर !) **(सवनेषु)** यज्ञों में **(सोमस्य)** भक्ति-रस-रुप सोम के **(गल्दया)** क्षारण के साथ **(गिरा)** वाणी से **(सदा)** हमेशा **(याचन्)** याचना करता हुआ **(अहं)** मैं **(भूर्णिं)** भरण-पोषण-कर्त्ता (आपको) **(मृगं न)** सिंह के समान **(न चुकुधं)** क्रुद्ध न कर दूँ। **(ईशानं)** स्वामी से **(कः)** कौन **(नः)** नहीं **(याचिषत्)** याचना करता हूँ।

हे इन्द्र ! मैं सदा ही तुमसे कुछ-न-कुछ मांगता रहता हूँ, अपनी खाली झोली पसारे तुम्हारे सामने खड़ा रहता हूँ। कभी मैं तुमसे आत्मबल मांगता हूं, कभी बुद्धि की याचना करता हूँ, कभी धर्म-कर्म की अभिलाषा करता हूँ, कभी शत्रुओं पर विजय की कामना करता हूँ, कभी धन-सम्पत्ति के लिए हाथ पसारता हूँ, कभी संकट में साहस और विपत्ति में धैर्य देने के लिए तुम्हारे द्वार खटखटाता हूँ, कभी तुमसे अपनी वैयक्तिक उन्नति और सामाजिक उन्नति की प्रार्थना करता हूँ। पर तुमसे न मांगू तो और किससे मांगू ? तुम्हीं तो विश्व के सम्राट् हो और तुम्हीं मेरे हृदय-मन्दिर के भी राजा हो।

मैं उपासना-रुपी सोम-यज्ञ रचता हूँ, प्रातः मध्याह्न, सायं उसके सवन आयोजित करता हूँ, भक्ति-यज्ञ के शिविर संचालित करता हूं, और उनमें भक्ति-रुप सोम-रस के क्षारण के साथ वाणी से तुम्हारी याचना करता हूँ, भिक्षुक बनकर तुम सम्राट के सामने उपस्थित होता हूँ। पर मुझे भय है कि अहर्निश मांगते-मांगते कहीं मैं तुम्हें कुपित न कर दूँ। सिंह वनराज कहलाता है, पर वह वन्य प्राणियों की मांगे पूरी नहीं करता, प्रत्युत उन्हें अपना ग्रास बनाता है। यदि वे उससे राजा होने के नाते कुछ याचना करें, तो उल्टा वह क्रुद्ध हो उठेगा, और अपना विकराल रुप दिखाकर संत्रस्त कर देगा। पर हे प्रभु ! आप मुछ याचक के सम्मुख सिंह का रुप धारण न करें, मुझे तो आप अपना सौम्य रुप ही दिखाते रहें। मुझे विश्वास है कि मैं जब भी आपके सम्मुख हाथ पसारूंगा, मुझे कुछ-न-कुछ अवश्य मिलेगा, क्योंकि आप भूर्णि हैं, भरण-पोषण-कर्त्ता हैं। आप घावों को भरने वाले हैं, छिद्रों को भरने वाले हैं, रीते हृदय को भरने वाले हैं, खाली भिक्षापात्र को भरने वाले हैं। आप यदि मांगने पर कुपित होंगे तो उसी स्थिति में होंगे, जब मैं केवल मांगता ही चलूंगा और प्राप्ति के लिए प्रयास नहीं करूंगा। पर मैं तो पुरुषार्थी बनकर आपसे मांगता हूँ, आलसी और भाग्यवादी होकर नहीं। अतः आपके मुझपर कुपित होने का प्रश्न ही नहीं है। मैं मांगू और आप देते चलें, यह समा बंधा रहे, मेरी तो यही एक साध है। इस मांगने में मुझे कुछ संकोच-लज्जा नहीं है, क्योंकि स्वामी से कौन नहीं मांगता ?

संस्कृतार्थ :- १. गल्दया गालनेन (निरु. ६.२४) गल स्रवणे। २. डुभृञ् धारणपोषणयोः। ३. मृगसिंह। यथा, मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठा (ऋग्. १.१५४.२)।

सम्पादकीय

मजहब हमें सिखाता आपस में बैर रखना

१५ अगस्त के साथ इस बार आजादी की ७०वीं वर्षगाँठ पूरी हो रही है इसे स्वतन्त्रता दिवस नाम दिया गया, जबकि यह विभाजन दिवस बनकर सामने आया, वह भी मजहब के नाम पर हमने खुशी खुशी इसे इसी रुप में स्वीकार कर लिया है। स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात भारतीय समाज में जो नेतृत्व उभरकर सामने आया उसने कुछ मूर्खतापूर्ण अवधारणाओं को भारतीय समाज पर थोपने का अनुचित प्रयास किया। इनमें से पहली बात तो यह थी कि यह नेतृत्व "धर्म" शब्द की वास्तविकता और व्यापकता को नहीं समझ सका। ऊपरी तौर पर "धर्म" के बाह्य स्वरुप को ही इसने धर्म मान लिया।

उदाहरण के रुप में हिन्दुओं द्वारा चोटी रखना और जनेऊ धारण करना धर्म का बाह्य स्वरुप है। जबकि मुसलमानों द्वारा रोजा, जकात, नमाज, हज और कलमा में आस्था रखना स्वधर्म का बाह्य लक्षण है। इसी प्रकार केश, कच्छा, कृपाण, कंघा और कड़ा धारण करना सिक्खों का अपने "धर्म" का बाह्य स्वरुप है। वैसे सिक्ख हिन्दू धर्म की रक्षार्थ बनाये गये गुरुओं के शिष्य थे। इसलिए यह कोई अलग धर्म नहीं अपितु हिन्दू समाज का ही एक अंग है। वस्तुतः धर्म का यह बाह्य स्वरुप सम्प्रदायवाद पर बल देता है। समाज को विभिन्न विचारधाराओं की प्रयोगशाला बनाता है। इससे समाज में विभिन्नताओं और विविधताओं का सृजन होता है। यह अकाट्य सत्य है कि जहाँ विभिन्नता और विविधताओं का बोलबाला हो वहां सामाजिक समरसता का निर्माण संभव नहीं हो सकता।

मानव धर्म का पालन सरल नहीं है : सामाजिक समरसता की स्थापना के लिए मानवीय मानस के उन सभी सूक्ष्म तन्तुओं की शल्य चिकित्सा करनी होगी जो मानव को मानव नहीं बनने देते हैं। मानव को मानव बनने से पूर्व इन वर्गों में बाँटने वाले तन्तु साम्प्रदायिक विषजनित तन्तु माने जाकर समूल नष्ट करने होंगे। तब होगा सामाजिक समरसता के निर्माण का स्वप्न साकार और सच्चे मानव का निर्माण भी तभी संभव होगा। "धर्म" मनुष्य को इसी अवस्था तक पहुँचाने वाली वस्तु है अर्थात् उसे मनुष्यत्व की पूर्ण पराकाष्ठा तक पहुँचाना धर्म का मनुष्य की उन्नति के प्रति वास्तविक ध्येय है।

धर्म निरपेक्षता का अनर्थ : स्वाधीनता के पश्चात मनुष्य के उसी धर्म की स्थापना भारत में होती तो यहां मनुष्यता (मानव का धर्म) के विकास और विस्तार में सहायता मिलती। किन्तु यहां विचार शून्य तत्कालीन नेतृत्व ने एक शब्द जाल रचा और भारत को धर्मनिरपेक्ष (धर्महीन, पथभ्रष्ट) राष्ट्र घोषित कर दिया। ऐसा राष्ट्र जो न तो अपनी संस्कृति के उत्थान पर बल देगा और न अपने धर्म पर बल देगा। अपितु इन दोनों से इसलिए दूर रहेगा कि इनके विकास और संरक्षण से समाज में साम्प्रदायिकता का विकास होगा। हाँ ! अन्य मत, पंथ और सम्प्रदाय (यथा मुस्लिम, ईसाई) को अपने-अपने मत, पंथ और सम्प्रदाय का विस्तार करने की खुली छूट होगी। क्योंकि यह उनका निजी मामला है।

राष्ट्रघाती चिन्तन से सावधान : इस दूषित और राष्ट्रघाती सोच का परिणाम यह निकला कि - आज हिन्दू बाहुल्य इस देश में हिन्दू ही शोषण का शिकार हो गया है। धर्मान्तरण का खेल आज भी जारी है। हिन्दुओं को कम करके पुनः किसी सम्प्रदाय का शासन भारत में स्थापित करने का सपना संजोया जा रहा है। स्वाधीनता और गणतन्त्र दिवस पर हम तिरंगे के नीचे खड़े होकर अपने नेतागण के मुखार त्रेंद से उनके सम्बोधन में प्रायः एक ही वाक्य सुना करते हैं कि - मजहब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना, इस वाक्य को इतना सुनाया गया है कि हमारे तो सुनते-सुनते कान ही पक गये हैं। हाँ ! इतना अवश्य हुआ है कि कुछ लोग इसको सच भी मान चुके हैं। सच भी है कि एक झूठ को हजार बार बोला जाये तो वह सच सा ही लगने लगता है। इसलिए जब बार-बार झूठी अवधारणा को भारतीय जनसाधारण के सामने रखा गया तो बहुत से लोग इसे सच मानने लगे।

मजहब ही तो सिखाता है आपस में बैर रखना : हमारी मान्यता इसके प्रतिकूल है। हम चूंकि **"मज़हब"** को धर्म का नहीं, अपितु सम्प्रदाय का पर्यायवाची मानते हैं, इसलिए मानव मस्तिष्क में उठने वाले सम्पूर्ण साम्प्रदायिक विद्वेष भरे कुंठित विचारों, हिंसक वृत्ति और अमानवीय आचरण का जनक हम मजहब को मानते हैं। इसलिए हमारी तो दृढ़ धारणा है कि- **"मजहब ही तो सिखाता है आपस में बैर रखना"** जिस कवि ने इन पंक्तियों को लिखा है कि **"मजहब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना।"** उन्होने ही एक सत्य को (आश्चर्य भरे शब्दों में) निम्न प्रकार बयान किया - **यूनान, मिस्र, रोमाँ, सब मिट गये जहां से। मगर बाकी है अब तक, नामोनिशाँ हमारा॥** इकबाल साहब को हमारे (वैदिक धर्म और इस पावन भारत देश के) अब तक बचे रहने पर आश्चर्य हुआ। क्योंकि यूनान, मिस्र और रोम मुस्लिम आक्रमण के समक्ष अपने स्वर्णिम अतीत और महान सांस्कृतिक विरासत को बचा नहीं सके। हमारा प्रश्न है कि यूनान, मिस्र, रोमां को डसने वाला कौन था ? किसने उनकी सभ्यता को मिटाया? किसने उनकी संस्कृति को, उनके धर्मको, उनकी निजता को उनके गौरवपूर्ण अतीत को और उनकी राष्ट्रीय पहचान को मिटाया ? उत्तर बिल्कुल साफ है **"मजहब"** ने।

जिन लोगों के भी मस्तिष्क में इन महान देशों की सभ्यता को और संस्कृति को मिटाने का विचार आया था वो लोग मजहबी लोग थे। साम्प्रदायिक लोग थे। इस सत्य को स्वीकार करके कि कुछ अत्यन्त गौरवपूर्ण सभ्यताएँ और संस्कृतियाँ संसार में नाम मात्र को शेष रह गयी हैं या समाप्त कर दी गयी हैं, आप यह नहीं समझ पाये कि इन्हें समाप्त करने की निविदा- सिर्फ मजहबी नाम के ठेकेदारों के पास ही थी। यह बह ठेकेदार हैं जिन्होने सदा ही उन्माद का व्यापार किया है। इसकी मूल प्रवृत्ति को समझने में आप चूक कर गये- यह देखकर आश्चर्य होता है। इकबाल साहब ! आपकी लेखनी इस भेड़िये को लताड़ती और इसे मानवता का प्रथम शत्रु घोषित कर इसके वास्तविक स्वरुप को उद्घाटित करती। तब सम्भव था इसके प्रति हमारे राजनैतिक नेतृत्व की सोच बदल जाती, उसे इसकी वास्तविकता का बोध होता।

इतिहास और मजहब : इतिहास को मानव रक्त के धब्बों से कलंकित करने में मजहब की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। वर्तमान समय में उपलब्ध विश्व के ज्ञात इतिहास में जितने युद्धों का वर्णन हम पढ़ते हैं उनमें से ९० प्रतिशत नाम पर लड़े गये युद्ध हैं। इतिहास में कही ईसाईयत परचम लहराने के लिए किसी अन्य मजहब को खाती, डसती और निगलती दिखलाई पड़ती है, तो कहीं जेहाद के नाम पर इस्लाम की तलवार का कहर बरसाया जा रहा है। बात जिहाद की आयी है, जिसका अर्थ होता है -

"मजहब के प्रचार के लिए लड़ा जाने वाला युद्ध।"

इस अर्थ का इस अवधारणा के साथ कि **"मजहब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना"** के साथ कैसे तारतम्य स्थापित किया जाय ? वास्तव में यही जिहाद ही तो था जिसने विश्व की कितनी ही हँसती खेलती और खाती-पीती सभ्यताओं और संस्कृतियों को समूल नष्ट करा दिया। पर्याप्त साक्ष्यों के उपलब्ध होते हुए भी यदि अपराधी को दोषमुक्त कर दिया जाता है तो न्यायालय की कार्यप्रणाली संदिग्ध बन जाया करती है इसलिए अपराधी को अपराधी कह कर घोषित किया जाए और उसे दंडित किया जाए। न्याय की यही मांग हुआ करती है। जिन लोगों ने भारत में अपराधी को अपराधी नहीं माना या नहीं मानने

दिया वे स्वयं अपराधी हैं, राष्ट्रघाती है और राष्ट्रद्रोही हैं। झूठी अवधारणाओं की प्रतिस्थापना राष्ट्र की दशा और दिशा को बिगाड़ दिया करती है। आज भारत में यही तो हो रहा है। इस राष्ट्र की दशा और दिशा दोनों बिगड़ी हुई है। क्योंकि हमने इतिहास से कोई सीख नहीं ली। अपितु अपराधी को दोषमुक्त कर खुला छोड़ दिया। आज यही अपराधी **"साम्प्रदायिकता"** के रुप में एक दानव बनकर भारत की एकता, अखण्डता और निजता को पुनः चुनौती प्रस्तुत कर रहा है और हम गाये जा रहे हैं इसका स्तुतिगान- **"मजहब नहीं सिखाता .... ।"**

साम्प्रदायिक लोगों को नहीं अपितु देशभक्तों को आरोपित किया गया। भारत के नेताओं के द्वारा इस भ्रमपूर्ण झूठी अवधारणा की प्रतिस्थापना से एक लाभ अवश्य हुआ है कि साम्प्रदायिक लोग साम्प्रदायिक नहीं रह गये हैं, उन्हें साम्प्रदायिक एकता का सूत्रधार होने का एक प्रमाण पत्र और थमा दिया गया। इसलिए उनके अमानवीय कृत्यों पर इस प्रकार लीपापोती की गयी कि आततायी और दुष्ट लोग भी भले लगने लगे। जैसे भारत में मोहम्मद बिन कासिम का पहला आक्रमण सन् १७१२ ई. में हुआ। उसके इस आक्रमण से लेकर सन् १८५७ ई. तक जब तक भारत में आधा-अधूरी मुस्लिम सत्ता रही तब तक एक **"मजहब"** के लोगों ने दूसरे सम्प्रदाय के लोगों पर जो अत्याचार ढाये, उन्हें पढ़कर अच्छे-अच्छे शूरमाओं के रोंगटे भी खड़े हो जायेंगे। किन्तु इन सभी आततायियों को साम्प्रदायिक या मजहबी शासक नहीं माना गया। क्योंकि मजहब तो आपस में बैर रखना सिखाता ही नहीं है। अब ऐसे विचारों के प्रतिपादकों से कौन पूछे कि यदि ऐसा था तो फिर किसके लिए ये लोग अत्याचार कर रहे थे ? किसके लिए वे खून बहा रहे थे ? और किसके लिए लूटपाट कर रहे थे ? हमने अपनी नग्न आंखों से इतिहास में देखा है - १. देवालयपुर (करांची) के मन्दिरों को लूटते। २. राजा दाहिर की बेटियों के साथ दुर्व्यवहार होते। ३. सोमनाथ मन्दिर को लूटते हुए और कितने ही मन्दिरों से अपार धन सम्पदा को भारत से बाहर जाते हुए। ४. कितने ही राजाओं, महान सेनानायकों, वीरों और भारतीय जनसाधारण के साथ अमानवीय अत्याचारों की अनवरत श्रंखला। ५. कितनी ही बार के रक्तपात, हिंसा के खेल और जनसंहार को। ६. अमानवीय ढंग से पाशविक अत्याचारों के साथ होने वाले धर्मान्तरण और मर्मान्तक रुप से दी जाने वाली पीड़ाओं को। ७. नंगी तलवार से निर्दयता के साथ बच्चों, बूढ़ों और महिलाओं का कत्ल और उनके साथ निन्दनीय और घृणित अपराध और अत्याचार एवं धर्मान्तरण करते हुए। यह सारा खेल किसलिए और किसके द्वारा खेला गया ? उत्तर है मजहब के द्वारा। अतः यह धारणा एक सिरे से ही अस्वीकार्य है कि **"मजहब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना"**। जो उदाहरण ऊपर दिये हैं, अथवा तथ्य उद्घाटित किये हैं ये सबके सब आज भी घटित होते रहते हैं।

कश्मीर समस्या का कारण मजहबी उन्माद : इसके उपरान्त अब कश्मीर का केसर बारूद में परिवर्तित हो गया है और उसकी वादियों की शांति आग में परिवर्तित हो गयी और ठंडी बर्फ खून की नदियों में बदल गयी। सारे घटनाक्रम का एक ही कारण है कि इस्लाम नामक मजहब को किसी दूसरे का अस्तित्व रास नहीं आ रहा है। फिर भी नई दिल्ली और श्रीनगर में बैठे हुए कुछ छद्म धर्मनिरपेक्षी तोतों की रटन्त जारी है कि - **"मजहब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना।"** कश्मीर में रोज रोज पत्थरबाजों के अत्याचारों का शिकार हमारे सुरक्षाकर्मी हो रहे हैं। वहां के नेता कभी इन भाड़े के टट्टूओं को भटके जवान बता देते हैं तो कभी बेगुनाह बताने को तुले रहते हैं। स्वतन्त्रता के पश्चात हमें अपनी नई मान्यताओं धारणाओं और सिद्धान्त के प्रतिपादन के समय अपने चिन्तन की परिधि का केन्द्र अपने राष्ट्र को बनाना चाहिए था। किन्तु इसका अपहरण मजहब ने कर लिया। जिस शत्रु को हम मार देना चाहते थे वह हमारी गलत नीतियों के कारण दूध पीकर और बलवान होता चला गया। फलस्वरुप आज राष्ट्र पुनः अपनी एकता और अखण्डता को अक्षुण्ण बनाये रखने के प्रति चिंतित दिखाई दे रहा है। इसका एकमेव कारण है कि हमने इतिहास से कोई सीख नहीं ली और शब्दों की गलत व्याख्याओं को अपनी राष्ट्रीय नीति का एक अनिवार्य ढंग बना लिया। आज इन तमाम समस्याओं का समाधान सिर्फ एक ही है कि उन्हीं लोगों का यहां वर्चस्व हो जो इस भारत भूमि को मात्रभूमि नहीं मातृभूमि माने, सारे क्रियाकलाप इसी भूखण्ड के सुख शान्ति व समृद्धि के लिए किए जाएँ। राष्ट्रद्रोह के रुप में उठने वाली विचारधारा को उसके जन्म स्थान में ही दफ़ना दिया जाय, तुष्टीकरण की खेती खत्म हो।

- आचार्य कर्मवीर

जन्माष्टमी

राष्ट्रधर्म के पुरस्कर्ता-श्रीकृष्ण

– क्षितीश वेदालंकार

आर्यावर्त्त में राम और कृष्ण दो ऐसे महापुरुष हुए हैं, जिन्हें राष्ट्रपुरुष और इतिहासपुरुष की दृष्टि से अद्वितीय कहा जा सकता है। राम मर्यादा-पुरुषोत्तम हैं और कृष्ण लीला-पुरुषोत्तम हैं। पुरुषोत्तम दोनों हैं। पुरुषोत्तम अर्थात् उत्तम पुरुष, अर्थात् आर्य। आर्यत्व की दृष्टि से जीवन को उत्तमता की पराकाष्ठा तक ले जाने वाले ये दोनों ऐसे अनुकरणीय महापुरुष हैं, जिनसे युग-युगान्तर तक मानव-जाति प्रेरणा ग्रहण करती रहेगी। परन्तु इनकी स्तुति और भक्ति से ओतप्रोत मानव-हृदय ने अपनी कल्पनाशील बुद्धि के चमत्कार द्वारा इन दोनों ही महापुरुषों को मानवोत्तर से इस प्रकार मानवेत्तर बना दिया है कि तथाकथित आधुनिक बुद्धिवादी लोग इन दोनों ही इतिहास पुरुषों को अनैतिहासिक कहने में अपनी आधुनिकता मानने लगे हैं। परन्तु भारतीय जन-मानस ने अपने हृदय के सिंहासन पर इन दोनों को इतने दृढ़ भाव से विराजमान किया है कि उसे अपने परिवार या स्वयं अपने निज के अस्तित्व से भी अधिक इन इतिहास-पुरुषों की ऐतिहासिक सत्यता पर आस्था है।

ये दोनों इतिहास-पुरुष महान् स्वप्नद्रष्टा भी थे। दोनों ने ही अपने स्वप्नों को अपने जीवनकाल में चरितार्थ करके दिखा दिया। सामान्य व्यक्ति महान् स्वप्न नहीं देखा करते। कभी उत्साह में आकर वैसा कर भी बैठें तो उनके स्वप्न उनकी अपनी सीमाओं के कारण और संसार की विपरीत परिस्थितियों के कारण शेखचिल्ली के स्वप्न बनकर रह जाते हैं। पर इन दोनों महापुरुषों के जहां स्वप्न विराट् थे, वहां इनके कर्त्तव्य भी विराट् थे और उन स्वप्नों की पूर्ति भी उतनी ही विराट् थी। संसार का इतिहास असफल स्वप्नद्रष्टाओं के स्वप्नभंगों की कहानियों से भरा पड़ा है। उन असफलताओं के महासागर में इन दोनों महनीय महापुरुषों का स्वप्न-साफल्य अद्भुत ज्योति-स्तम्भ बनकर खड़ा है। संक्षेप में कहना हो तो यह कहा जा सकता है कि श्रीराम ने नेपाल के सीमावर्ती प्रदेश मिथिला से लेकर राक्षसाधिपति रावण की लंका तक-ठेठ उत्तर से लेकर ठेठ दक्षिण तक-सारे भारत को एक सूत्र में आबद्ध किया था, तो श्रीकृष्ण ने द्वारिका से लेकर मणिपुर तक-ठेठ पश्चिम से ठेठ पूर्व तक-सारे भारत को एक सूत्र में आबद्ध और एक दृढ़ केन्द्र के अधीन बना दिया कि समस्त राष्ट्र को इतना बलवान् और इतना अपराजेय बना दिया कि महाभारत के पश्चात् लगभग ४ हजार वर्ष तक अनेक विदेशी शक्तियाँ बार-बार प्रयत्न करने पर भी आर्यावर्त्त को खण्डित नहीं कर सकीं। आश्चर्य की बात यही है कि इन दोनों राष्ट्रपुरुषों के अन्य अवान्तर रूपों की चर्चा से जहाँ ग्रन्थ के ग्रन्थ भरे पड़े हैं, वहाँ इस राष्ट्रनिर्माता-रूप की चर्चा प्रायः नगण्य ही रह गई है। यह हमारी कूपमण्डूकता और मानसिक दृष्टि से बौनेपर की निशानी नहीं तो और क्या है ? ये महापुरुष जितने विराट् थे, स्वप्न की दृष्टि से भी और उसकी पूर्ति की दृष्टि से भी, हमारे लेखक और कवि उसकी तुलना में उतने ही वामन रह गए।

जिस स्वप्न की हम चर्चा कर रहे हैं, उसका बीज मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के मन में ऋषियों द्वारा बोया गया था, जबकि योगेश्वर श्रीकृष्ण का यह स्वप्न स्वोपज था। राम का जीवन आदि से अन्त तक ऋषियों की योजना, उनके मार्गदर्शन और उनके अनुशासन से संचालित था और इसीलिये वे ऐसे सरोवर की तरह मर्यादित थे, जिसमें कभी ज्वार नहीं आ सकता। होश संभालने के बाद श्रीकृष्ण जीवन के प्रत्येक क्षण में, अन्तरात्मा से प्रेरित थे, इसलिए उनका जीवन एक ऐसी पहाड़ी नदी के समान है जो उछलती-कूदती, चट्टानों को तोड़ती, दुर्गम उपत्यकाओं में अपना मार्ग बनाती और बरसात में अपने कूल-किनारों की

और शाखा रुप कार्ययुक्त वृक्ष अर्थात् जो स्थूल होकर प्रलय में छिन्न-भिन्न हो जाता है वह तीसरा अनादि पदार्थ इन तीनों के गुण कर्म और स्वभाव भी अनादि है। इन जीव और ब्रह्म में से एक जो जीव है वह इस वृक्ष रुप संसार में पाप पुण्य रुप फलों को अच्छे प्रकार भोक्ता है और दूसरा परमात्मा कार्यों के फलों को न भोक्ता हुआ चारों ओर अर्थात् भीतर बाहर सर्वत्र प्रकाशमान हो रहा है। जीव से ईश्वर ईश्वर से जीव और दोनों से प्रकृति भिन्न स्वरुप तीनों अनादि है।

स.प्र. अष्टम समु.

ईश्वर सर्वव्यापक है सृष्टि के कण कण में है अणु परमाणु में है परमाणु के अन्दर जो इलेक्ट्रान चक्कर लगा रहे हैं और सूर्य का चारों ओर जो ग्रह चक्कर लगा रहे हैं वहां भी है आकाश पाताल और जहां हमारा मन भी न पहुंच पाता वहां भी है व्यापक होकर ही संसार को चला रहा है। एक देशीय होता तो कैसे चलता कैसे संसार को देखता फिर तो एक स्थान विशेष पर रहने से तो वहीं तक चलाने व देखने तक सीमित रहता। अतः वह सर्वव्यापक है और कण कण में है एक ही समयमें सम्पूर्ण सृष्टि में व्याप्त है। सब कुछ देख रहा है। उस परमपिता परमात्मा की व्यापकता को जानकर ही हमें सद्कर्म करने चाहिए। सत्य व न्याय का आचरण करना चाहिए। संसार का उपकार करना चाहिए सत्य को ग्रहण व असत्य को छोड़ना चाहिए। वह ईश्वर सर्वव्यापक है उसी की उपासना हमें करनी चाहिए।

पता : चन्द्रलोक कालोनी, खुर्जा (उ.प्र.)

एक चुटकी सेहत

आंवला : *इसकी एक फांक या चंद टुकड़े भोजन के ठीक बाद खाने से भोजन में मौजूद पोषक तत्वों खासतौर पर आयरन का अवशोषण बेहतर होता है। हर भोजन के बाद मुखशुद्धि के लिए आंवले का उपयोग बहुत फायदेमंद है।*

तिल : *भुने हुए सफेद या काले तिल के दो चम्मच दिन में कभी भी खा लें। इसे भोजन में मिलाकर भी खा सकते हैं। यह आयरन व कैल्शियम के अच्छे स्रोत है।*

अलसी : *एक छोटा चम्मच अलसी दिन में कभी खाएँ। इसमें मौजूद ओमेगा ३ फैटी एसिड्स दिल की सेहत और मधुमेह के रोगियों के लिए लाभदायक सिद्ध होंगे।*

गीत

इस जीवन से प्यारे क्या फायदा,
जो काम किसी केआ न सके।
उपलब्धियां ही अपनी गिनाते रहे,
गीता दाता के लेकिन गा ना सके ॥
भौतिक युग का नशा सर पे ऐसा चढ़ा
गुण मानवता के सारे भूल ही गये।
डांस पार्टी में दौलत उड़ाते रहे,
हाथ सहिता को अपना उठा ना सके ॥
कैसे आया ना पूछो पर इतना आ गया,
सात पीढ़ी की व्यवस्था तक हो गई।
मौत उड़ा ले गई जीवन पंछी को जब,
चंद सिक्के भी साथ अपने जा ना सके ॥
भौतिकी में उठे तो इतना उठ गये,
रात को भी दिन जैसा बना ही दिया।
चरित्र से गिरे तो इतना गिरते गये,
सम्मान अपना भी जग में बना ना सके ॥
दौड़ते ही रहे मन में यह तृष्णा लिये,
सम्पन्नता में सब ये आगे ही रहे।
इतना उलझने सजाई है अपने लिये,
सुख चैन से भोजन कभी खा ना सके ॥
ऐसा युग आ गया गौर से देख लो,
सेज सबने सजाई है स्वार्थ की।
कोई राजा या कोई सन्त देख लो,
कोई स्वार्थ से स्वयं को बचा ना सके ॥
धन जरुरी बहुत है जीने के लिये,
धन बिना काम कोई भी बनता नहीं।
धर्म से कमाया अर्थ ही फलता 'मोहन'
इस बिन शान्ति मन में समा ना सके ॥

- मोहनलाल चड्ढा
१७३, एमआईजी-॥,
हुडको भिलाई

आध्यात्मिक

ईश्वर की सर्वव्यापकता

- डॉ. बिजेन्द्रपाल सिंह

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी महाराज ने सुषुप्त प्रायः भारत में पुनः वेद की ज्योति प्रकाशित कर विश्व को ईश्वर के स्वरुप के विषय में ज्ञान दिया। विभिन्न मत व पौराणिक भी तो ईश्वर को उसका स्वरुप वेद विरुद्ध ही जानते थे कोई ईश्वर को चौथे सातवें आसमान पर कोई काबे में कोई केदारनाथ बद्रीनाथ में कोई शेषनाग पर कोई समुद्र में बैठा मानते आए थे और भी अनेक रुपों बताया जाता रहा था। अभी भी ईश्वर को अवतार मान भ्रम में पड़े हुए है। ऋषि ने वेद ज्ञान द्वारा भ्रान्तियों का निवारण किया।

ईशावास्यमिदम् सर्वं यत्किञ्च जगत्यांजगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गृधः कस्यस्विद्धनम्॥

यजु. अ. ४०

जो कुछ बात जगत में गमनशील संसार है सो यह सब ईश्वर से आच्छादित है। हे जिज्ञासु मनुष्य तू उस ईश्वर से प्रारब्ध कर्मानुसार प्राप्त धन से भोग कर। किसी के धन की आकांक्षा मत कर अथवा हे जीवात्मन् तू मत लालच कर धन किसका है। मंत्र में प्रथम पंक्ति का संकेत है कि इस गमनशील संसार में सब कुछ ईश्वर से आच्छादित है अर्थात् सब में परमात्मा है। परमात्मा संसार में व्यापक है। ईश्वर सर्वत्र व्यापक है सब देख रहा है ईश्वर के बताये मार्ग पर चल उसकी ही उपासना करनी चाहिए।

व्यापकत्व के कारण ही तो वह सृष्टि को चला व पालन कर रहा है सूर्य समय पर उदय होता व अस्त होता है दिन रात्रि होते पक्ष व वर्ष आते जाते हैं। चन्द्रमा पृथिवी के चक्कर लगा रहा है पृथिवी मंगल, वृहस्पति व शुक्र आदि ग्रह सूर्य के चक्कर लगा रहे हैं। पृथिवी अपनी धुरी पर भी चक्कर लगा रही है। पर्वत नदी समुन्द्र वन व चारों ओर हरियाली समय-समय पर रंग बिरंगे पुष्प लताएं आदि और जीवों के कार्य कलाप वही परमात्मा तो देख रहा है यह सव विधि विधान उसका ही है। यदि एक देशीय होता तो इतनी विशाल सृष्टि को जिसकी विशालता का हम अनुमान भी नहीं लगा सकते कैसे देखता व चलाता अनेक मत मतान्तर वादी व पौराणिक भ्रम की स्थिति में है, उनके अनुसार वह कैलाश पर्वत पर, समुन्द्र में शेष नाग के सिर पर, केदारनाथ या बद्रीनाथ गोकुल श्रीपुर में स्थित मानते व पवन सातवें और ईसाई चौथे आसमान पर बैठ मानते। विचारणीय प्रश्न यह है कि यदि ईश्वर साकार हो एक स्थान पर बैठा देख रहा होता तो कहां तक देख सकता था। अधिक से अधिक मील दस मील पचास मील तक परन्तु उसके आगे नहीं देख सकता था, दृष्टि अथवा नेत्र भौतिक है, जहां तक दृष्टि जा सकती है वहीं तक तो देख सकता है आगे नक्षत्र ग्रह उनसे दूर तक कैसे देख सकता है। पौराणिकों का ईश्वर तो मन्दिरों में चार दिवारी में रहता है और पूजा अर्चना के पश्चात मन्दिर के कपाट भी बन्द कर दिए जाते हैं। फिर वह उनका ईश्वर मन्दिर के अन्दर तक ही देख पाता होगा बाहर कैसे देखेगा फिर दुनियां कैसे चलेगी। यह उनकी धारणा सत्य के विपरीत है वह न साकार है न एक देशीय है वह अणु परमाणु में भी है। जहां इलेक्ट्रान चक्कर लगा रहे हैं वह उन ग्रहों को भी देख रहा है, जो सूर्य के चक्कर लगा रहे हैं। इस सृष्टि में अनेक और भी सूर्य है जो हमें दिखायी नहीं दे रहे वहां भी है यह उसका व्यापक का गुण ही तो है वह सर्वव्यापक है सृष्टि को चला रहा है। जगत ईश्वर व जीव के विषय में मन्त्र है -

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते तयोरन्य,
पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाक शीति॥

ऋग. मं.१, सूक्त १६४, मं. २०

जो ब्रह्म और जीव दोनों चेतनता और पालनादि गुणों से सदृश व्याप्य व्यापक भाव से संयुक्त परस्पर मित्रता युक्त सनातन अनादि है और वैसा ही अनादि मूल रुप कारण

मर्यादाओं को भंग करती लगातार आगे बढ़ती चली जाती है। विचारकों ने मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम को द्वादश कलावतार और श्रीकृष्ण को षोडश कलावतार कहा है। उनका अभिप्राय एक को दूसरे से बड़ा या छोटा कहने से नहीं, प्रत्युत राम क्योंकि सूर्यवंशी थे और सूर्य की गति ज्योतिष के हिसाब से बारह राशियों के अन्दर होती है, इसलिए राम को भी उन्होंने द्वादश कलाओं के अवतार के रूप में सम्बोधित कर दिया, और श्रीकृष्ण क्योंकि चन्द्रवंशी थे और चन्द्रमा की कृष्णपक्ष से शुक्लपक्ष तक सोलह कलाएँ मानी जाती हैं, इसलिए श्रीकृष्ण को षोडस कलावतार कह दिया। परन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि श्रीराम को जिस युग में और जिन परिस्थितियं में अपने विराट् को स्वप्न को पूर्ण करने का सौभाग्य मिला, कदाचित् वे परिस्थितियाँ उतनी जटिल नहीं थी, जितनी श्रीकृष्ण के समय थीं। रामायणकालीन समाज तो काफी-कुछ मर्यादा में बँधा हुआ था जबकि कृष्णकालीन समाज मर्यादाओं के होते हुए भी उनको तोड़ने में ही अपनी शान समझता था। जिस युग में और जिन परिस्थितियों में श्रीकृष्ण ने सफलता प्राप्त की, उस युग में और उन परिस्थितियों में मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम होते तो क्या करते, यह केवल कल्पना का ही विषय बन सकता है।

हम में से अधिकांश लोग इतना तो जानते हैं कि हमारा एक राष्ट्र है और अतीत काल में उसके जीवन का आधार धर्म रहा है, किन्तु मानव-जीवन को सब पुरुषार्थों की प्राप्ति का साधन मानकर तदनुसार समाज-व्यवस्था का निर्माण करके जो राष्ट्रधर्म तैयार होना चाहिए, उसकी रूप-रेखा क्या हो, उसके बारे में दिग्भ्रम ही अधिक दिखाई देता है। राष्ट्र जब जीवित रहते हैं, तो उसका आधार उनकी निश्चित जीवन-प्रणाली और उनके जीवन के उद्देश्य के रूप में उनका तत्त्वज्ञान रहता है। राष्ट्र के महापुरुष इसी तत्त्वज्ञान के आधार पर समय-समय पर इहलोक और परलोक की नीति, शत्रु -मित्र-व्यवहार, आदर्श और क्रियात्मकता की आचरणीय सीमा और व्यक्ति तथा समाज के आपसी सम्बन्धों को निर्धारित करते हैं। सर्वसाधारण उन महापुरुषों के आचरण और उनके द्वारा निर्धारित नीति का ही अनुगामी होता है। अमुक सिद्धान्त क्यों ग्रहण करने योग्य है, अथवा निश्चित सिद्धान्तों को त्याग देने से समाज का कौन-सा अहित होगा-आदि प्रश्नों की मीमांशा विचारवान् लोग निरन्तर करते रहते हैं। वे बताते हैं कि राष्ट्र और समाज का हित इन सिद्धान्तों का पालन करने से किस प्रकार प्राप्त होगा। इस प्रकार विचारवान् पुरुषों द्वारा निर्धारित सिद्धान्त ही उस राष्ट्र का तत्त्वज्ञान बन जाते हैं। उदाहरण के लिए, हिटलरकालीन जर्मनी का राष्ट्रीय तत्त्वज्ञान एक भिन्न प्रकार का था जो आर्यन रक्त की श्रेष्ठता पर आधारित था, तो स्टालिनकालीन रूस का तत्त्वज्ञान रक्त पर अवलम्बित न होकर समाज की संस्कृति को आर्थिक आधार पर नियमित करना चाहता था। इस दृष्टि से भारत के राष्ट्रीय तत्त्वज्ञान का निर्धारित करने वाला महाभारत-जैसा और कोई ग्रन्थ हैं। यह अद्वितीय राष्ट्र-ग्रन्थ है। वेद महान् ग्रन्थ हैं। वे तो सृष्टि के आदि के होने के कारण ज्ञान-विज्ञान के मूल स्रोत हैं ही, किन्तु भारतीय समाज के सभी वर्ण, सभी जातियाँ और सभी आबाल-वृद्ध नर-नारियों का जैसा समावेश इस ग्रन्थ में है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। आचार-विचार, गृह-व्यवस्था, नीति, कल्पना, व्यक्तिगत और सामाजिक व्यवहार, यहाँ तक कि हमारे रक्त के प्रत्येक कण में महाभारत के संस्कारों की छाया परिलक्षित होती है। इसलिए हम महाभारत को भारत के राष्ट्र-धर्म का प्रतिपादक ग्रन्थ कहते हैं। यह ग्रन्थ किन्हीं काल्पनिक कथाओं का पिटारा न होकर-जैसे कि पुराण हैं- उनसे भिन्न एक जीवित इतिहास-ग्रन्थ है। अतीत की सत्यगाथा, भविष्य की थाती और वर्तमान का आधार-सम्पूर्ण इतिहास इसमें समाहित है। यह सत्य है कि इतिहास के साथ-साथ यह काव्य भी है और काव्य में होनोक्ति, वक्रोक्ति, अन्योक्ति या अत्युक्ति अलंकार का रूप ग्रहण करती है। इसलिए इस महान् ग्रन्थ में कुछ अद्भुत अमानवीय और अलौकिक घटनाओं का भी वर्णन मिलता है। इस अलौकिकता के चक्कर में हमारी कितनी ही ऐतिहासिक कथाएँ दूषित भी हुई है, किन्तु सूक्ष्म निरीक्षण का यत्न किया जाय और काव्य के अलंकारों को छोड़कर खरे इतिहास का ज्ञान प्राप्त किया जाय तो कठोरतम दृष्टि से जांचने पर हमारा सप्रमाण सिद्ध होने वाला गौरवशाली इतिहास भी महाभारत में विद्यमान है।

पर्व प्रेरणा

श्रावणी पर्व अविद्या के नाश तथा विद्या की वृद्धि करने का विश्व का एकमात्र मुख्य पर्व

– मनमोहन कुमार आर्य

भारत के श्रावण मास की पूर्णिमा को श्रावणी पर्व के रुप में मनाने की प्राचीन परम्परा है। यह पर्व आर्य पर्व है जिसमें वैदिक धर्म व संस्कृति के संवर्धन व उन्नयन का रहस्य विद्यमान है। श्रावण मास वर्षा ऋतु का मास होता है। इस माह प्रायः प्रतिदिन अथवा अधिकांश दिनों में देश के अधिकांश भागों में वर्षा होती है जिससे नदियों का जल स्तर बढ़ जाता है और अनेक स्थान बाढ़ की चपेट में आ जाते हैं। वर्षा ऋतु में सड़क मार्ग से एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने में बाधायें भी आती हैं। देश के विगत एक शताब्दी में उससे पूर्व शताब्दियों की तुलना में सभी क्षेत्रों में आशातीत प्रगति की है। अब पूर्व काल के समान वर्षा ऋतु लोगों को पीड़ित नहीं करती न कष्ट ही देती है। नगरों में अच्छी सड़कें हैं, समृद्ध लोगों के पास कारें आदि हैं, वर्षा ऋतु में भी बसें व अन्य वाहन चलते हैं।

अतः लोग वर्ष के अन्य दिनों की भांति ही कार्य करते हैं। यह बात अलग है कि पैदल व दो पहियां वाले लोगों को आवागमन में कठिनाईयां होती है। अधिक वर्षा से नदियों का जल स्तर बढ़ जाने से अनेक स्थानों पर बाढ़ व जल भराव की स्थिति बनती है जिससे जनजीवन अस्त व्यस्त भी होता है। अतः आधुनिक समय में भी जहां सभी क्षेत्रों में प्रगति हुई है, वहीं जन जीवन में बाधक प्राकृतिक घटनाओं पर पूर्ण नियंत्रण नहीं पाया गया है। अतः प्राचीन काल में श्रावण में वर्षा के कारण लोग कार्यों से अवकाश रखते थे और घर में रहकर वेदों व वेद व्याख्या विषयक ग्रन्थों का स्वाध्याय कर आध्यात्मिक व अन्य विषयों का अपना ज्ञान बढ़ाते थे। प्राचीन काल में आज की तरह सभी ग्रन्थ मुद्रित रुप में सबको सुलभ नहीं थे।

अतः लोग निकटवर्ती आश्रमों में जाकर रहते थे और वहां रहने वाले वेदज्ञ विद्वानों से जीवन के उत्थान से संबंधित उपदेशों का श्रवण करते थे। ऐसा करने से ही श्रवण मास व इसकी पूर्णिमा के दिन मनायें जाने वाला श्रावणी-पर्व सार्थक होता था। समय के साथ-साथ लोगों में आलस्य व प्रमाद बढ़ने के कारण हमारे ब्राह्मणों व इतर वर्णों में वेदों के अध्ययन के प्रति रुचि कम होती गई और श्रावण मास के स्वाध्याय पर्व का स्वरुप विकृत होकर रक्षा बन्धन पर्व इसका रुप बन गया।

इस पर्व का रक्षा बन्धन रुप में भी इस दृष्टि से सार्थक होता है कि हम ऋषियों व वेदज्ञ योगियों के आश्रमों में जाकर, उनसे ज्ञान प्राप्त कर, अपने जीवन की रक्षा करें। ऐसा करने से अविद्या का नाश व विद्या की वृद्धि सम्भव होती है। प्राचीन काल में चातुर्मास वा श्रावण मास में वेदाध्ययन व वेदों के स्वाध्याय का कुछ ऐसा ही स्वरुप प्रतीत होता है। कालान्तर में श्रावणी पर्व का यह स्वरुप भी नहीं रहा और इसका विकृत रुप बहिनों द्वारा अपने भाईयों व राजस्थान के वीर राजपूतों की कलाईयों पर रक्षा सूत्र बांधने ने ले लिया जिससे आवश्यकता पड़ने पर वह उनकी रक्षा कर सकें। इसका एक कारण यही प्रतीत होता है कि मुस्लिम शासन काल में जब नारियों पर अत्याचार व उनके अपमान की घटनायें होने लगीं तो बहिने अपने भाईयों व समाज के वीर पुरुषों को भाई बनाकर उन्हें रक्षा सूत्र बांधती थी। अतः अतीत में इस पर्व के अवसर पर वेदों के स्वाध्याय सहित अनेक परम्परायें जुड़ गई और समय के साथ रक्षा बन्धन आदि का स्वरुप बदलने से वर्तमान परिस्थितियों में इसकी उपयोगिता भी कम व नगण्य सी रह गई है। जहां तक वेदों के स्वाध्याय व उसके अनुरुप आचरण का प्रश्न है, वह जितना पहले कभी उपयोगी था उतना ही आज भी है और आगे भी रहेगा।

श्रावणी पर्व वेदों के स्वाध्याय का पर्व है जिसे ऋषि तर्पण नाम भी भी दिया जाता है। ऋषि तर्पण का अर्थ ऋषियों को सन्तुष्ट करना व उनके ऋण से उऋण होना है। ऋषियों की प्रिय वस्तु वेदों का ज्ञान है जिसकी प्राप्ति वेदोपदेश ग्रहण करने व वेदों के स्वाध्याय से होती है। वेदों की रक्षा मानव जाति के अस्तित्व की रक्षा के समान महत्वपूर्ण है। अतः वेदों का संवर्धन व उसका अधिकाधिक प्रचार

आवश्यक व अनिवार्य है। जो गृहस्थ व व्यक्ति वेदों के ज्ञान की प्राप्ति में स्वाध्याय आदि कार्यों में लग है वह ऋषियों का प्रिय होता है। आजकल भी देखते हैं कि विद्यालय के अध्यापक उस विद्यार्थी को पसन्द करते हैं जो अधिक अध्ययनशील, चिन्तन, मननशील व अनुशासित होता है और जिसे पाठ्यक्रम का पूर्ण व अधिकांश ज्ञान होता है। अतः ऋषियों को सन्तुष्ट करने वा उनके ऋण से उऋण होने का एकमात्र उपाय यही है कि हम उपलब्ध वेद ज्ञान को बढ़ायें, उसका अध्ययन कर उससे अलंकृत हों, दूसरों में अधिकाधिक उसका प्रचार व प्रसार करें जिससे वेदों का उपलब्ध ज्ञान अप्रवृत्त होकर नाश को प्राप्त न हो। हमने देखा है कि मध्यकाल में वेदों का ज्ञान प्रायः पूरीतरह से अप्रवृत्त हो गया था जिससे देश व संसार में अज्ञान का अंधकार फैल गया। अविद्याजन्य मत-मतान्तर उत्पन्न हो गये जो आज भी समाप्त होने का नाम नहीं ले रहे हैं।

आज भी लोगों में सत्य ज्ञान के प्रति प्रवृत्ति जागृत नहीं हो सकी है। यह आज के समय का सबसे बड़ा आश्चर्य है कि मनुष्यों में सत्य ज्ञान की प्राप्ति व उसके अभ्यास की प्रवृत्ति नहीं है। इसका परिणाम मनुष्य व देशवासियों को दुःख के अतिरिक्त अन्य कुछ होने वाला नहीं है। यदि वेद ज्ञान से शून्य होंगे तो हमारे आत्मिक व शारीरिक दुःख दूर नहीं होंगे। जब तक मुक्त नहीं होंगे, भिन्न-भिन्न योनिपयों में बार बार हमारा जन्म होता रहेगा। अतः वेदों व वेदों के व्याख्या ग्रन्थों का स्वाध्याय व उनका जीवन में आचरण ही ऋषि तर्पण है। यह ऋषि तर्पण इस लिए कहलाता है कि इससे हम ऋषि ऋण से मुक्त होते हैं। वेदों का स्वाध्याय व अध्ययन जितना अधिक होगा उतना वैदिक धर्म व संस्कृति उन्नत व समृद्ध होगी। स्वाध्याय वा ऋषि तर्पण का यह क्रम लगभग साढ़े चार मास चलता है, जिसका आरम्भ उपाकर्म से और समापन उत्सर्जन से होता है। इस विषय में अधिक जानने के लिए आर्य विद्वान पं. भवानी प्रसाद लिखित आर्य पर्व पद्धति का अध्ययन आवश्यक है।

वेद और यज्ञ का परस्पर गहरा सम्बन्ध है। सभी यज्ञ वेद मन्त्रों के पाठ व वेद मन्त्रों में निहित विधियों के द्वारा ही होते हैं। अतः श्रावण मास में यज्ञों को नियम पूर्वक करना चाहिये। यज्ञ से हानिकारक कीटाणुओं का नाश होता है। वायु की दुर्गन्ध का नाश होकर वायु सुगंधित हो जाती है जो स्वास्थ्य के लिए लाभदायक होती है। अनेक प्रकार के रोग नियमित यज्ञ करने से दूर हो जाते हैं और यज्ञ करने से अधिकांश साध्य व असाध्य रोगों से बचाव भी होता है। यज्ञ के प्रभाव से निवास स्थान व घर के भीतर की वायु यज्ञाग्नि की गर्मी से हल्की होकर बाहर चली जाती है और बाहर की शीतल व शुद्ध वायु घर के भीतर प्रवेश करती है जो स्वास्थ्यप्रद होती है।

वायु में गोघृत व वनौषधियों सहित मिष्ट व पुष्टिकारक पदार्थों की आहुतियां देने से उस वायु का लाभ न केवल यज्ञकर्ता को होता है अपितु वह वायु दूर दूर तक जाकर असंख्य लोगों को लाभ पहुंचाती है। जितने लोग लाभान्वित होते हैं उसका पुण्य भी यज्ञकर्ता को मिलता है। यज्ञ में वेदमन्त्रों को बोलकर आहुति देने से मन्त्र में निहित ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना व उपासना सहित उसके अर्थों को जानकर उसके अनेक आध्यात्मिक व भौतिक लाभ भी यज्ञ करने वाले मनुष्य को प्राप्त होते हैं। इससे वेदों की रक्षा भी होती है। इसी कारण वैदिक धर्म में प्रत्येक पर्व पर यज्ञ करने का विधान है जिससे यह सभी लाभ यज्ञकर्ता व उसमें उपस्थित लोगों सहित पड़ोसियों व दूरदेशवासियों को भी प्राप्त हो सकें। श्रावणी का दिन विशेष पर्व पद्धति के अनुसार यज्ञ आयोजित कर इसका लाभ सभी गृहस्थियों को उठाना चाहिये। श्रावणी पर्व श्रावण मास की पूर्णिमा के दिन मनाया जाता है। हम अपने अनुभव के आधार पर कहना चाहते हैं कि श्रावण मास में आरम्भ कर चार व साढ़े मास तक वैदिक साहित्य का अध्ययन वा स्वाध्याय करना चाहिये, इससे वर्तमान व शेष जीवन सहित परजन्म में भी लाभ होता है, ऐसा सत्यशास्त्र बताते हैं। इसके लिए सत्यार्थ प्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, संस्कार विधि, आर्याभिविनय का अध्ययन कर ऋषि दयानन्द कृत ऋग्वेद व यजुर्वेद भाष्य का स्वाध्याय करना चाहिये। ऋग्वेद के अवशिष्ट भाग व अन्य वेदों पर आर्य विद्वानों के भाष्य का अध्ययन करना जीवन में अभ्युदय व निःश्रेयस में अग्रसर करता है। आर्य विद्वानों स्वाध्याय के लिए अनेक ग्रन्थों की रचना की है जिसके अध्ययन से मनुष्य निभ्रान्त स्थिति का लाभ प्राप्त करता है। यही जीवन का उद्देश्य भी है।

पता : १९६ चुक्खूवाला-२, देहरादून-२४८००१

विचारात्मक

वैदिक ज्ञान बनाम आत्मज्ञान

- आनन्द प्रकाश गुप्त

विद्वानों ने वेद का शुद्ध एवं शाब्दिक अर्थ ही ज्ञान को कहा है। वेद शब्द विद् धातु से बना है और विद् का अर्थ है जानना। सामासिक शब्द में जब विद् शब्द जोड़ दिया जाता है तब उसका अर्थ जानने वाला या संबंधित विषयवस्तु में विशारद अर्थ हो जाता है। जैसे शास्त्र विद्, वेदविद्, ज्योतिषविद्, जलविद्, पर्यावरणविद्, भाषाविद्, कलाविद्, चिकित्साविद् इत्यादि। यह भी एक अद्भुत बाता है कि इस पृथ्वी के प्राचीनतम सर्वांगीण ज्ञान के ग्रंथ का नाम ही वेद है। जिसका अर्थ ही "ज्ञान" होता है।

एक मत कहता है कि वेद ईश्वर की रचना है। वैसे जब हम यह स्वीकारते हैं कि संसार में जो भी दृश्य अदृश्य, चर-अचर, प्राणी या जड़ वस्तुएँ हैं, सभी की रचना ईश्वर ने की है तो यह भी मान सकते हैं कि वेद वाणी ईश्वर के द्वारा ऋषियों के अन्तःकरण में स्फुरण का परिणाम है। आज विश्व में देखा जा रहा है कि कोई भी सम्प्रदाय अपने ग्रन्थों को ईश्वर से कमतर की रचना नहीं मानता या फिर वह अपने धार्मिक या साम्प्रदायिक ग्रन्थ को ईश्वर द्वारा प्रेषित शब्दों का एक चमत्कार मानता है। इसका परिणाम यह हुआ है कि अमुक-अमुक समाज भयंकर जड़ता का शिकार हो गया। वहां समाज के स्वनामधन्य अग्रदूत अपने को अधिकार वाणी का अधिकारी मानकर साम्प्रदायिक विष फैलाने का कार्य कर रहे हैं। ईश्वत तो एक है और उसने अलग-अलग देशों (प्रदेशों) तथा अलग-अलग भाषाओं में अपनी वाणी के अनेक ग्रन्थ कैसे भेज दिया, जो एक दूसरे से मल नहीं खाते और उनको मानने वालों में आपस में अतीव विरोध है। हाँ उनमें कुछ आचरणगत संदेशों में समानता पायी जाती है। यह सभी सद्ग्रन्थों की खूबी है।

वेद्रशास्त्री वेदों की वाणी को शब्दशः न मानने वालों को नास्तिक मानते हैं। मुस्लिम धर्मी कुरान की बातों को न मानने वाले को नापाक और काफिर मानते हैं। सभी कहते हैं कि जो हमारे धर्म की किताब दर्शन और शिक्षा के अनुसार आचरण व्यवहार नहीं करेगा, वह इस भवसागर के भटकाव में उलझा रहेगा, या फिर (काल्पनिक) नरक की यातनाएँ भोगेगा। जबकि तार्किक दृष्टि से विचार करने पर हम पाते हैं कि सारी भाषागत रचनाएँ मनुष्यों के द्वारा रची गयी है और अपने-अपने तत्कालीन समाज के अनुसार वह विकास की राह और सदाचारिता तथा कुटुम्ब/समाज की भलाई की राह दिखाई देती है।

वेदों में भी हम पाते हैं कि वहां पर कई सूक्त एवं मंत्र गंभीर आशय के रहस्यात्मक, गूढ़ तथा अति उच्चभाव वाले हैं और कई तो अत्यन्त शिथिल भाव वाले नहीं है। इससे यह प्रतीत होता है कि वेदों के सभी सूक्त पूर्ण बोधवान, सर्वज्ञ तथा आप्तकाम पुरुषों की रचनाएँ नहीं है। समय-समय पर इनमें अनेक ऋषियों ने अपने-अपने भावों को जोड़ा है। यह मानना उचित है कि वेद आत्मज्ञान का द्योतक है। क्योंकि वेद का अर्थ ही "ज्ञान" होता है और ज्ञान नित्य है। मीमांसक कहते है कि जगत नित्य हैं, अनादि है, उसके बनाने के लिए भी ईश्वर की आवश्यकता नहीं है। इसी प्रकार वेद भी आनादि और नित्य है अतएव उसके रचयिता की आवश्यकता नहीं है पर यह बात भी सत्य है कि वेदों के रचयिता का पता नहीं चलता, इसलिए वे अपौरुषेय हैं। यह अपनी-अपनी श्रद्धा का विषय है परन्तु किसी भी रचना को जिसकी लिपि, व्याकरण, संकेत, चिन्ह शैली एक निश्चित हो एक क्रम में हो, उसे अपौरुषेय मानने से हम अपनी ही बुद्धि के विकास के मार्ग को अवरुद्ध करने का कार्य करते हैं और जहां कहीं भी बुद्धि-विचार के मार्ग अवरुद्ध किये जाते हैं वहां एक विवेकशील, चैतन्यित बुद्धिजीवी के मन में कुंठा का जाग्रत होना एक सामान्य प्रक्रिया है। यह इतिहास सिद्ध है कि जब भी मानवता ने किसी भी पंथ या धार्मिक संगठन की आड़ लेकर अपनी बुद्धि-विचार पर लगाम लगाई है उसने अपने ही पैरों में कुल्हाड़ी मारने का काम किया है।

संसार की समस्त भाषा शैलियों तथ्यों को समझाने

और समझने का माध्यम है। इनके माध्य से शब्दों का निर्माण होता है आवश्यकता की पूर्ति के लिए शब्द गढ़े जाते हैं। उनके कुछ अर्थ निर्मित होते हैं अतएव यह मानना कि कोई ग्रन्थ अनादि है, समझ से परे हैं।

वेद वाक्य, बालसुलभ, निश्छल, निष्कपट हृदय के उद्गार हैं। वेद वाक्यों की यह विशेषता है कि इनमें वैदिक ऋषि तथा ऋषिकायें जिस बात को जैसा समझते थे उसको बिना कुछ छिपाये वैसा ही कहते थे और जहां भी निष्कपटता, निश्छलता, निर्मलता के भाव होते हैं, वहां परमेश्वर प्रदत्त चरित्र दृष्टिगोचर होता है। जो व्यापक हित में होता है। यही आत्मज्ञान है। यही ब्रह्मज्ञान है। जब भूमंडल अज्ञान और अंधकार से व्याप्त था और जिस समय कबीलों की परम्परा थी, लूटमार, अत्याचार का बोल-बाला था। कोई सामाजिक नियमावली नहीं था तब भारतवर्ष में हमारे ऋषि/ऋषिकाएँ सारगर्भित सुन्दर काव्यों की रचना कर रहे थे। वेदों में गृहस्थ जीवन की सामान्य बातें हैं, तो पिंड, ब्रह्माण्ड, तत्व, प्रकृति, देवता, आत्मा, परमात्मा, सृष्टि, परलोक, जीवन, मृत्यु, अमरता इत्यादि उदाप्त विचारों का चिंतन समाहित है।

वेद चार हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। ऋग्वेद भारत ही नहीं वरन इस धरती तल का महानतम ग्रन्थ हैं। जिसमें काव्य रुप में छंदबद्ध अलंकारिक सूक्त है। सूक्तों में गूढ़ रहस्य हैं तो जीवनोपयोगी सरल वर्णन भी हैं। जिन्हें रुपकों, अभिधा, लक्षण और व्यंजना के माध्यम से संवारा गया है। जब कोई भी पुस्तकालय-विद्यालय आदि नहीं थे, उस काल में वैदिक ऋषियों/ऋषिकाओं द्वारा रची गयी सारगर्भित सुन्दर काव्य रचनाएँ उस कालखण्ड की समृद्ध संस्कृति के जीवंत दर्शन कराती है। यह वैदिक रचनाएँ हमारे पूर्वजों की अमूल निधि हैं। यह वेदसूक्त प्रवाहमयी काल के कालजयी स्वर्णस्तंभ हैं।

वेद साहित्य के बारे में कई तरह के भ्रामक प्रचार भी समय-समय पर किये गये हैं। जैसे - एक धारणा है कि वेद धूर्त-भांड लोगों की रचनाएँ है। हो सकता है कि किसी कालखंड में वैदिक रचनाएँ किन्हीं गलत, शरारती, चतुर और नकारात्मक लोगों के हाथ लग गयी हों। परन्तु यह सत्य है कि इस प्रकार की नकारात्मक धारणा रखकर वेदों के महत्वपूर्ण ज्ञान को कोई क्या समझेगा। वेदों के रचनाकार के बारे में कई मत हैं जैसे- प्रथम, वेद अपौरुषेय है, ये अनादिकाल से चले आ रहे हैं। द्वितीय, वेद ईश्वर की रचना है। तृतीय, वेद सर्वज्ञ तथा आप्तऋषियों की रचनाएँ हैं। चतुर्थ, वेद एक परम्परा की देन है। परन्तु यह सत्य है कि वेद प्राचीनता ग्रन्थ हैं, न केवल आर्य मानवता का अपितु सम्पूर्ण विश्व का और हम आशा करते हैं कि जब तक सूरज-चांद-सितारे आकाश में चमकते रहेंगे, पृथ्वी पर, पर्वत और नदियों की अनुपम छबि विद्यमान रहेगी तब तक ऋग्वेद की महिमा संसार में फलती-फूलती रहेगी।

वेद के रचना काल और स्थान पर भी विद्वानजन एक नहीं है। उनमें मतभिन्नता है पर यह सच है कि ये इसी भारत भूमि में ही रचे गये हैं। एक समय में हिन्दुकुश, गांधार, कंम्बेज से लेकर सिंध, पंजाब, कुरु-पांचाल, राजस्थान, काशी, कौशल, पाटिलपुत्र, मगध तक वैदिक ऋषियों के मंत्र गूंचते थे। क्रमु (कुर्रमी) गोमती (गोमल) तथा कुभा (काबुल से लेकर सिंधु) शतुद्वि सतलुज) परुषणी (रावी), अस्किनी (चिनाब), अर्जीकिया, सरस्वती, गंगा-यमुना की उत्ताल तरंगों के साथ वैदिक ऋषियों की ऋचाएं भी तरंगायित होती रही है। जहां तक काल का प्रसंग है जो वेदों को अपौरुषेय मानते हैं, यह एक अति मानवीय भावुकता है। कोई भी ग्रंथ किसी स्थान और किसी कालखंड में ही बनता है। ऋग्वेद मुख्य है। इसके बाद यजुर्वेद और अथर्ववेद हैं परन्तु इन तीनों की भाषा में अंतर है। सामवेद के मंत्र गायन के लिए हैं। मात्र पचहत्तर मंत्र सामवेद के स्वयं के हैं शेष सभी ऋग्वेद से लिए गये हैं। इसी प्रकार यजुर्वेद और अथर्ववेद में भी काफी मंत्र ऋग्वेद से ही लिए गये हैं।

श्रद्धालु तथा अति भावुक लोग मानते हैं कि वेद एक साथ ईश्वर ने दिये हैं परन्तु जब हम तकनीकी दृष्टि से वेद मंत्रों का अन्वीक्षण करते हैं तो पाते हैं कि शताब्दियों या सहस्राब्दियों में विभिन्न ऋषियों/ऋषिकाओं द्वारा वेद के मंत्र बनते रहे हैं। ऋग्वेद में ऋषियों ने स्वयं कहा है कि "जो पूर्व ऋषियों की स्तुति से बढ़ा, जो बीच के ऋषियों की स्तुति से बढ़ा और जो नये ऋषियों के स्त्रोतों से बढ़ा।"

(ऋग्वेद ३/३२/१३- यः स्तोमेभिर्वावृधे पूर्व्येभिर्यो मध्यमे भिरुत नूतनभिः॥) इसी प्रकार के भाव ऋग्वेद के चौथे, पांचवे, छठवें तथा नौवें मण्डल के स्त्रोतों में भी ऋषियों द्वारा व्यक्त किये गये हैं। ऋग्वेद के र ायिता लगभग दो सौ चौरनबे ऋषि हैं। इन मंत्रों द्वारा अस्सी देवताओं अर्थात् प्राकृतिक शक्तियों की प्रशंसा/महिमा/स्तुति की गयी है और इन्हें लगभग छप्पन प्रकार के छंदों में गाया गया है।

वेदों के पढ़ने के अधिकारी के बारे में बहुत लोगों ने गलत बातें की हैं। कुछ लोगों ने तो इन्हें समाज के निम्नवर्ग को पढ़ने से रोकने की बात कही है। यह सब नकारात्मक लोगों द्वारा कही गयी समाज को भ्रमित करने वाली और विभेद करने वाली बाते हैं। आज कल तो राजनीतिक दृष्टि से, वर्ग संघर्ष को जन्म दे, अपना स्वार्थ साधने वाले व्यक्ति भोली-भाली जनता को बहकाकर सही में उनका भला न चाहने वाले लोग ऐसी भ्रामक बातों को हवा दे रहे हैं। जबकि सच यह है कि समाज के प्रत्येक व्यक्ति को जो उसकी भाषा को जानता हो और उसे पढ़ने में श्रद्धा एवं रुचि हो, इन्हें पढ़ सकता है। वह इनके अनुवाद द्वारा भी ज्ञानार्जन कर सकता है। वह किसी भी जाति वर्ग या लिंग का हो। वेदों के रचयिता ऋषि/ऋषिकायें स्वयं हीसमाज के सभी वर्णों से हैं। जब शूद्र और स्त्रीवर्ग बेद मंत्र की रचना कर सते हैं तो क्या वे पढ़ नहीं सकते हैं। गार्गी, मैत्रेयी आदि बृह्मवादिनी स्त्रियां वेद सूक्तों की रचयिता हैं। इसी प्रकार ऐतरेय, महीदास, कक्षीवान गोत्र के शबर आदि शूद्र कुल में पैदा हुए ऋषि भी वेद मंत्रों के रचयिता हैं। यह संभव है कि विषाक्त मानसिकता वाले, किन्ही जानकारों ने ऐसी कुछ-कुछ अनर्गल बातें शास्त्रों में जोड़कर शास्त्रों एवं समाज को बदनाम करने के लिए जानबूझकर ऐसा कार्य किया हो। आज जो चाहे वेद शास्त्र पढ़े कोई रोकने वाला नहीं है। तथ्य यह है कि पढ़ने की रुचिवाले ही न्यूनतम हैं। विवादों को हवा देने वाले आज बहुतेरे हैं।

हमें गर्व होना चाहिए कि पवित्र भारतभूमि में वेद और उनसे जुड़े अप्रतिम, आत्मज्ञान के वाहक शास्त्रों की रचना हुई। जो कि समाज के सभी वर्गों को आत्मकल्याण का मार्ग प्रशस्त करने में सक्षम हैं। वर्तमान काल में यह महती आवश्यकता है कि वेदों के ज्ञान का समाज में प्रचार प्रसार हो जिससे सभी मनुष्य संसार के प्राचीनतम ज्ञान से परिचित होकर लाभ प्राप्त कर सकें।

पता : ए.एस. ३०२, सुमंगल अपार्टमेंट लिंक रोड, बिलासपुर (छ.ग.)

रक्षाबंधन के अवसर पर

स्नेह भरे दो तार

भाई से बहनों ने पूछा, कर लोगे स्वीकार ? स्नेह भरे दो तार।

❀

इन धागों को लेकर भाई, तुमको प्राण जगाने होंगे।
कष्ट कठिन अन्तर बहनों के, तुमको आज सजाने होंगे॥
तुम्हें जलाने होंगे दीप घोर गहन तम की बेला में,
और विलासी सारे क्षण यह, तुमको स्वप्न बनाने होंगे॥
बड़ा कठिन व्यवहार! है बोलो स्वीकार? स्नेह भरे दो तार॥

❀ ❀

एक ओर बहनों की लज्जा, पैसे के बदले में बिकती।
जलती, लुटती, मिटती, रोती जीवन भर ज्वाला में बिकती॥
और हर्ष में मतवाले तुम, भूल चुके यह करुण कहनी।
सोच रहे हो इसी लहर में, पागल सारी दुनियां बहती॥
उठा सकोगे भार? तो लो यह पतवार! स्नेह भरे तो तार॥

❀ ❀ ❀

बन्धु! नहीं भिक्षा की झोली, यह तो है कर्त्तव्य पुकार!
बहन तुम्हारे सम्मुख आयी, तुम उसको दोगे दुत्कार॥
आज तुम्हारा सारा जीवन और सुखी संसार मांगती,
रक्षा के हित पास तुम्हारे, आ करती हूँ मैं मनुहार॥
जोड़ो टूटे तार! यही बने श्रृंगार। स्नेह भरे दो तार॥

सौजन्य - श्रीमती दीपाली वर्मा, दुर्ग (छ.ग.)

समय लगाओ सफलता पाओ

वैचारिक

परस्परतंत्र

- नरेन्द्र आहूजा 'विवेक'

यह ठीक है कि मनुष्य पाणिनी अष्टाध्यायी के सूक्त "स्वतन्त्र कर्ता" के अनुसार अपने द्वारा संपादित किसी भी कार्य को करने, ना करने वा किसी अन्य प्रकार से करने के लिए स्वतन्त्र होने के कारण स्वतन्त्रकर्ता कहलाता है और इसीलिए अपने द्वारा किए गए कर्मों के फल को भोगने के लिए **'अवश्वमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्'** के कर्मफल सिद्धांत के अनुसार ईश्वरीय न्याय व्यवस्था में उनका भोक्ता भी होता है। महर्षि देव दयानन्द आर्यसमाज के नियमों में बड़े स्पष्ट शब्दों में लिखते हैं **"सभी मनुष्य सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहें किन्तु प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।"** व्यक्तिगत स्वाधीनता की सीमा जब सामाजिक सर्वहितकारी नियमों को पालने के लिए पराधीनता में परिवर्तित हो जाती है इसे ही परस्परतंत्र कहते हैं।

वैसे तो मनुष्य का तन एक अनमोल साधन के रुप में हमें अपने पूर्वजन्मों के कर्मों के फलों के आधार पर ईश्वरीय न्याय व्यवस्था के अन्तर्गत मिलता है। इस अनमोल साधन की विशेषता भोग के साथ-साथ कर्म की स्वतन्त्रता होती है। लेकिन यदि यह कर्म स्वतन्त्रता हमें हमारे मार्ग से विमुख करके मनुष्य जीवन के लक्ष्य अर्थात् मोक्ष प्राप्ति से भटका दे तो हम **'मनुष्यरुपेण मृगाश्चरन्ति'** मनुष्य के रुप में पैदा होकर भी पशुओं के समान केवल कर्मभोग भोगते हुए विचरण करते हैं और पुनः जन्मजाल के बंधन में ही बंध कर रह जाते हैं। महर्षि दयानन्द ने इसीलिए व्यक्तिगत हितकारी नियमों में स्वाधीनता और सामाजिक सर्वहितकारी नियमों में पराधीनता की बात आर्यसमाज के दसवें नियम में लिखी है।

वैसे भी मनुष्य एकदेशीय होने के कारण अल्पज्ञ तथा अल्पशक्ति वाला होता है और उसे अपने अधिकांश कार्यों की पूर्ति के लिए दूसरों पर निर्भर रहना पड़ता है। जैसे जिस अन्न से हम भोजन करते हैं भोजन के रुप में हम तक पहुंचने से पूर्व किसान, खेत में काम करने वाला मजदूर, आढ़ती, उसे परिष्कृत करने वाले और फिर उसे रसोई में पकाने के पुरुषार्थ के उपरांत ही हम यह भोजन ग्रहण कर पाते हैं। लेकिन इन सभी का पुरुषार्थ भी अपने स्वयं के लाभ के कारण ही होता है। इसका एक और उदाहरण स्वयं हमारा शरीर है। यथा ब्रह्माण्डे तथा पिण्डे मनुष्य का शरीर भी एक ब्रह्माण्ड की भांति ही उसका एक सूक्ष्म रुप है। मानव शरीर के सभी अंग भी हम मनुष्यों की भांति एक-दूसरे पर अपने कार्यों की सिद्धि के लिए निर्भर रहते हैं। जैसे लिखते समय यदि हाथों के साथ मन मस्तिष्क और आंखों का परस्पर सामंजस्य न हो तो हाथ कभी भी लिखने में सक्षम नहीं हो पायेंगे। परस्पर सहयोग और सामंजस्य की यह भावना हम सभी के एक ही आधार पर टिके होने से सिद्ध होती है। जिस प्रकार फूलों की माला में छिपा हुआ धागा बिखरे हुए फूलों को एक सूत्र में बांधकर माला के रुप में परिवर्तित कर देता है। ठीक उसी प्रकार वह सर्वव्यापी परमपिता परमेश्वर सृष्टि के कण कण में विद्यमान होकर हम सभी का आधार, ओढ़ना व बिछौना बनकर हमें एक सूत्र में बांधते हैं साथ ही साथ वह परमपिता परमेश्वर समान रुप से अपने अति सूक्ष्म रुप में हम सभी जीवात्माओं के अंदर **ईश्वर सर्वभूतानां हृद्देशे तिष्ठति** अर्थात् सर्वअन्तर्यामी एक सूत्र में पिरोने का काम भी करते हैं। यही हमारी परस्परतंत्रता का आधार बनता है।

यज्ञ की परिभाषा में भी देवपूजा, संगतिकरण, दान तीन आवश्यक अवयव आते हैं। यहां यज्ञ के आवश्यक अवयव के रुप में संगतिकरण हम मनुष्यों के एक सूत्र में बंधे होकर परोपकार की दृष्टि से सामाजिक सर्वहितकारी नियमों में परतंत्र होकर व्यक्तिगत हितकारी स्वतन्त्रता के बावजूद हमें समाज के रुप में जोड़े रखने के लिए परस्परतंत्रता का सिद्धान्त देते हैं। इसे यदि हम आधुनिक संविधान में देखे तो मेरे किसी भी अधिकार की सीमा किसी अन्य के अधिकार

का अतिक्रमण करने की अनुमति नहीं देती। जहां किसी अन्य नागरिक के अधिकार की सीमा प्रारंभ होती है वहीं से मेरे उसके प्रति कर्त्तव्य प्रारंभ हो जाते हैं। इसे ही परस्परतंत्रता कहते हैं। यह परस्परतंत्रता अपने स्वार्थ के परित्याग और परोपकार की भावना के स्वीकार करने से ही सिद्ध होती है। इसीलिए क्रान्तदर्शी देव दयानन्द ने **"संसार का उपकार करने को ही आर्यसमाज का मुख्य उद्देश्य"** नियमों में लिखा।

हम मनुष्य एक दूसरे के बिना नहीं रह सकते और ना ही जीवन यापन कर सकते हैं। किसी भी प्रकार का कोई रिश्ता ना होते हुए भी हम मनुष्यों को परस्परतंत्रता के सिद्धान्त के अन्तर्गत सामाजिक समरसता के लिए मित्रभाव से देखना व वर्तना होता है। वेद भगवान ने आदेश दिया **"मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे"** अर्थात् हम एक दूसरे को मित्रभाव से देखें और वर्तें। जैसे अकेला खड़ा बड़े से बड़ा वटवृक्ष आंधी में अपने इस अकेलेपन के बोझ से गिर पड़ता है लेकिन आपस में जुड़ी हुई सरोवर में पैदा हुए कच्चे कमल वृद्धि को प्राप्त होते हैं। एक दूसरे के सहयोग व आश्रय से रहने वाले मित्र बंधु, बांधव, संबंधीजन विपरीत परिस्थितियों में भी एक दूसरे का सहयोग करते उन स्थितियों को अनुकूल कर लेते हैं। परस्परतंत्रता व पारस्परिक मित्रता को विकसित करने के लिए हमें एक दूसरे पर विश्वास, एक दूसरे की भावनाओं का आदर व सम्मान करना चाहिए। अपनी गलती को बिना संकोच स्वीकार कर ठीक करते हुए क्षमा याचना करनी चाहिए। व्यर्थ की शिकायतों, निंदा, उलाहने व ताने मारने से बचना चाहिए। एक दूसरे को परस्पर उत्साहित व प्रेरित करना चाहिए तथा संकट के समय सहृदयता से सहायता करनी चाहिए। पारस्परिक मित्रता में स्वार्थ व अहंकार का कोई स्थान नहीं होता।

पारस्परिक सहयोग सहअस्तित्व और एक दूसरे के हित को ध्यान रखने की भावना ही परस्परतंत्रता में सर्वोपरि होती है। कभी सैद्धान्तिक आलोचना आवश्यक हो जाए तो वाणी की अपेक्षा हमारा जीवन स्वयं बोले अर्थात् जिन सिद्धान्तों को हम स्थापित करना चाहते हैं उन सिद्धान्तों का पहले अपने जीवन में स्वयं पालन करें। यह परस्परतंत्रता व पारस्परिक मित्रता सामाजिक समरसता एकजुटता व उत्थान के लिए अत्यंत आवश्यक है।

पता : ६०२, जी.एच. ५३, सैक्टर-२० पंचकूला

नकारः षड्विधः स्मृतः

मौनं काल विलम्बश्च प्रयाणं भूमिदर्शनम्।
भृकुटन्यमुखी वार्त्ता नकारः षड्विधः स्मृतः ॥ (चीआक)

भावार्थ :- आप किसी से कुछ कहना चाहते है और वह लज्जावश (अथवा जो भी आन्तरिक कारण हों) आपको रीति से मना न कर सके और निम्नांकित छः लक्षणों को प्रदर्शित करे तो समझ लेना चाहिए कि - वह अपनी अनिच्छा ही व्यक्त कर रहा है। **मौनम् :-** आपके कुछ कहते ही सुनने वाला मौन हो जावे (चुप्पी साध लेवे) तो समझना चाहिए कि वह मना कर रहा है। **काल विलम्बश्च** - समय का उल्लंघन कर देना बात को टाल जाना। आप कोई कार्य के लिये कहें और उसका अतिक्रमण कर दे तो समझना चाहिए कि - वह निषेध ही है। **प्रयाणम् :-** किसी बात को सुनकर चल देना। यह भी अस्वीकृति सूचक ही है। **भूमिदर्शनम् :-** भूमि (जमीन) की ओर देखने लग जाना। यह अनिच्छामयी भाषा में अस्वीकारोक्ति ही मानी जानी चाहिए। **भृकुटयन्मुखी वार्त्ता :-** भौंहों को तान कर (ऊपर चढ़ाकर) त्यौरियाँ बदल कर वार्त्ता के समय अन्य मुखापेक्षी होना (अनमना होकर दूसरे की बातें सुनने लगना) भी नकारात्मक उत्तर है।

- सुभाषित सौरभ

महर्षि दयानन्द के मन्तव्य

दृष्टिकोण

- खुशहालचन्द्र आर्य

१. जो उन्नति करना चाहो तो आर्यसमाज के साथ मिलकर उसके उद्देश्यानुसार आचरण स्वीकार कीजिये, नहीं तो कुछ हाथ न लगेगा, क्योंकि हम और आपको अति उचित है कि जिस देश के पदार्थों से अपना शरीर बना, अब भी पालन होता है, आगे भी होता होगा, उसकी उन्नति तन, मन, धन से सब जने मिलकर प्रीति से करें। इसलिए जैसा आर्यसमाज आर्यावर्त्त देश की उन्नति का कारण है, वैसा दूसरा नहीं हो सकता।

२. मैं जैसा सत्य धर्म की उन्नति और स्वदेश का उपकार होने से प्रसन्न होता हूं, वैसा किसी अन्य बात पर नहीं।

३. मैं तो अपना तन, मन, धन सब कुछ सत्य के ही प्रकाशनार्थ समर्पण कर चुका। मुझसे खुशामन्द करके अब स्वार्थ का व्यवहार नहीं चल सकता, किन्तु संसार का लाभ पहुंचाना ही मुझे राज्य के तुल्य है।

४. मेरा तात्पर्य किसी को हानि वा विरोध करने का नहीं, किन्तु सत्यासत्य के निर्णय करने-कराने का है।

५. मैं अपना मन्तव्य उसी को जानता हूं, जो कि तीन काल में सबको एक-सा मानने योग्य है। मेरा कोई नवीन कल्पना वा मतमतान्तर चलाने का लेश मात्र भी अभिप्राय नहीं है। किन्तु जो सत्य है उसको मानना-मनवाना और जो असत्य है उसको छोड़ना और छुड़वाना मुझको अभीष्ट है।

६. वैदिक धर्म प्रचार का कार्य बहुत अच्छा है। हम जानते है कि हमारे सारे जीवन में पूरा न हो सकेगा। परन्तु चाहे दूसरा जन्म धारण करना पड़े, मैं इस महती कार्य को अवश्य पूर्ण करूंगा।

७. मैने कोई नया पंथ चलाकर गुरुगद्दी वा मठ नहीं बनाया है। मैं तो लोगों को मठवादियों के मठों से स्वतन्त्र करना चाहता हूं।

८. मैं अपने सामर्थ्य के अनुसार वेद का उपदेश करता हूँ। सिवाय उपदेशक के और मैं कुछ अधिकार नहीं चाहता।

९. मैने इस धर्म कार्य का सर्वशक्तिमान, सत्यग्राहक और न्याय सम्बन्धी परमात्मा के शरण में शीश पर उसी के सहाय के अवलम्बन से आरम्भ किया है।

१०. चाहे कोई हो, जब तक मैं न्यायाचरण देखता हूं, और जब अन्यायचरण प्रकट होता है, फिर उससे मेल नहीं करता।

११. मैने आर्यसमाज का उद्यान लगाया है, इससे मेरी अवस्था एक माली की सी है। पौधों में खाद डालते समय, राख और मिट्टी ही माली के सिर पर पड़ ही जाया करती है। मुझ पर राख और धूल चाहे कितना पड़े, मुझे उसका कुछ भी ध्यान नहीं, परन्तु वाटिका हरी-भरी रहे और निर्विघ्न फूले-फले।

१२. मेरी अन्तःकरण से यही कामना है कि भारत वर्ष के एक अन्त से दूसरे अन्त तक आर्यसमाज स्थापित हो और देश में व्यापी हुई कुरीतियों का उन्मूलित हो जाए।

१३. यद्यपि इस ग्रन्थ को देखकर अविद्वान लोग अन्यथा ही विचारेंगे तथापि बुद्धिमान लोग यथायोग्य इसका अभिप्राय समझेंगे, इसलिए मैं अपने परिश्रम को सफल समझते हुए अपना अभिप्राय सब सज्जनों के सामने करता हूं। इसकी देख-दिखावा से मेरे श्रम को सफल करें और इसी प्रकार पक्षपात न करके सत्यार्थ का प्रकाश करना मेरा वा सब महाशयों का मुख्य कर्त्तव्य काम है। विस्तृत और चिरस्तायी करें।

१४. वारहवें समुल्लास में जो-जो जैनियों के मत के विषय में लिखा है सो-सो ग्रन्थों के पते पूर्वक लिखा है। इसमें जैनी लोगों को बुरा न मानना चाहिए क्योंकि जो-जो हमने मत विषय में लिखा है, वह केवल सत्यासत्य के निर्णयार्थ है, न कि विरोध वा हानि करने के अर्थ। इस लेख को जब जैनी, बौद्ध वा अन्य लोग देखेंगे तब सबको सत्यासत्य के निर्णय में विचार और लेख करने का समय मिलेगा और बोध भी होगा।

१५. यह बौद्ध-जैन मत का विषय बिना इनके अन्य मतवालों को अपूर्व लाभ और बोध कराने वाला होगा, क्योंकि ये लोग अपनी पुस्तकों को किसी अन्य मत वालों को देखने, पढ़ने वा लिखने को भी नहीं देते। भला यह किन विद्वानों की छल है कि अपने मत की पुस्तक आप ही देखना और दूसरों को न दिखलाना।

१६. जैसा मैं पुराण, जैनियों के ग्रन्थ, बाईबिल और कुरान को प्रथम ही बुरी दृष्टि से न देखकर उनमें से गुणों और दोषों का त्याग तथा अन्य मनुष्य जाति की उन्नति के लिए प्रयत्न करता हूं, सबको करना योग्य है।

१७. यद्यपि मैं आर्यावर्त देश में उत्पन्न हुआ और बसता हूं तथापि जैसा इस देश के मतमतान्तरों की झूठी बातों का पक्षपात न कर यथातथ्य प्रकाश करता हूं, वैसी ही पूरे देशस्त वा मतोन्नति वालों के साथ भी वर्त्तता हूं। जैसे स्वदेश वालों के साथ मनुष्य उन्नति के विषय में वर्त्तता हूँ, वैसा विदेशियों के साथ भी तथा सब सज्जनों को भी वर्त्तना योग्य है।

१८. वेद अर्थात् जो-जो वेद में करने और छोड़ने की शिक्षा की है, उस-उसका हम यथावत् करना छोड़ना मानते हैं। जिस लिए हमको वेद मान्य है, इसलिए हमारा मतवेद है। ऐसा ही मानकर सब मनुष्यों को विशेष आर्यो को एक मत होकर रहना चाहिए।

१९. संसार में जितने दान है, अर्थात् जल, अन्न, गौ, पृथ्वी, वस्त्र, तिल, सुवर्ण और घृत आदि इन सब दानों में वेद विद्या का दान सर्वश्रेष्ठ है।

२०. प्राचीन काल में आर्यजन वैदिक संस्कार किया करते थे। वैदिक आचरण युक्त होते थे। इसलिए उसकी सन्तान में ओज होता था, तेज होता था और शूरवीरता होती थी। परन्तु इस युग में लोग इन्द्रियाराम और विषयानन्द को ही प्रधानता दिये हुए हैं, वैदिक संस्कारों का त्याग कर बैठे हैं। लोगों के घरों में कुरीतियों की भरमार है। इसलिए उसकी सन्तान भी निस्तेज, दीन, दुखिया उत्पन्न होती है।

२१. हम तो यही मानते हैं कि सत्याभाषण, अहिंसा, दया आदि धर्मगुण सब मतों में अच्छे हैं, बाकी वाद-विवाद, ईर्ष्या, द्वेष, मिथ्याभाषणादि कर्म सब मतों में बुरे हैं। यदि तुम को सत्य मत ग्रहण की इच्छा हो तो वैदिक मत को ग्रहण करें।

२२. ओ३म् उसका नाम है जो कभी नष्ट नहीं होता, उसी की उपासना करनी योग्य है। अन्य की नहीं। सब वेदादि शास्त्रों में परमेश्वर का प्रधान व निज नाम "ओ३म्" को कहा है, अन्य सब गौणिक नाम है। सब वेद सब धर्म अनुष्ठान रुप तपश्चरण जिसका कथन और मान्य करते और जिसकी प्राप्ति की इच्छा करके ब्रह्मचर्य आश्रम करते हैं, उसका नाम "ओ३म्" है।

यह लेख भी मैंने अपने उपयोगी व उत्तम समझकर श्री उत्तरासिंह जी आर्य क्रान्तिकारी है (प्रधान हरयाणा आर्य युवक परिषद) द्वारा लिखित महापुरुषों की दृष्टि में महर्षि के सत्यउपदेश नामक पुस्तक से उद्घृत किया है। इस पुस्तक में लेखक ने सत्यार्थ प्रकाश के आधार पर महर्षि के समस्त विचारों को प्रकट किया है। इतनी उपयोगी पुस्तक लिखने के लिए मैं क्रान्तिकारी जी को हार्दिक धन्यवाद देता हूं, साथ ही सुधि पाठकों से भी विनम्र निवेदन है कि इस लेख को खुद मन लगाकर पढ़ें ताकि मेरा तथा क्रान्तिकारी जी का परिश्रम सफल हो सके।

पता : गोविन्दराम आर्य एण्ड संस, १८०, महात्मा गांधी रोड, (दो तल्ला) कोलकाता-७००००७

विडम्बना
आजादी कहें या स्वतन्त्रता

आजादी कहें या स्वतन्त्रता ये ऐसा शब्द हैं जिसमें पूरा आसमान समाया है। आजादी एक स्वाभाविक भाव है या यूँ कहें कि आजादी की चाहत मनुष्य को ही नहीं जीव-जन्तु और वनस्पतियों में भी होती है। सदियों से भारत अंग्रेजों की दासता में था, उनके अत्याचार से जन-जन त्रस्त था। खुली फिजा में सांस लेने को बेचैन भारत में आजादी का पहला बिगुल १८५७ में बजा किन्तु कुछ कारणों से हम गुलामी के बंधन से मुक्त नहीं हो सके। वास्तव में आजदी का संघर्ष तब अधिक हो गया जब बाल गंगाधर तिलक ने कहा कि **"स्वतन्त्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है"**। अनेक क्रांतिकारियों और देशभक्तों के प्रयास तथा बलिदान से आजादी की गौरव गाथा लिखी गई है। यदि बीज को भी धरती में दबा दें तो वो धूप तथा हवा की चाहत में धरती से बाहर आ जाता है क्योंकि स्वतन्त्रता जीवन का वरदान है। व्यक्ति को पराधीनता में चाहे कितना भी सुख प्राप्त हो किन्तु उसे वो आनन्द नहीं मिलता जो स्वतन्त्रता में कष्ट उठाने पर भी मिल जाता है। तभी तो कहा गया है कि- **पराधीन सपनेहूँ सुख नाही**।

जिस देश में चन्द्रशेखर, भगतसिंह, राजगुरु, सुभाषचन्द्र, खुबीराम बोस, रामप्रसाद बिस्मिल जैसे क्रान्तिकारी तथा गांधी, तिलक, पटेल, नेहरु जैसे देशभक्त मौजूद हों उस देश को गुलाब कौन रख सकता था। आखिर देशभक्तों के महत्वपूर्ण योगदान से १४ अगस्त की अर्धरात्रि को अंग्रेजों की दासता एवं अत्याचार से हमें आजादी प्राप्त हुई थी। ये आजादी अमूल्य है क्योंकि इस आजादी में हमारे असंख्य भाई-बन्धुओं का संघर्ष, त्याग तथा बलिदान समाहित है। ये आजादी हमें उपहार में नहीं मिली है। वंदे मातरम् और इंकलाब जिंदाबाद की गर्जना करते हुए अनेक वीर देशभक्त फांसी के फंदे पर झूल गए। १३ अप्रैल १९१९ को जालियावाला हत्याकांड, वो रक्त रंजित भूमि आज भी देशभक्त नर-नारियों के बलिदान की गवाही दे रही है।

आजादी अपने साथ कई जिम्मेदारियां भी लाती है, हम सभी को जिसका ईमानदारी से निर्वाह करना चाहिए किन्तु क्या आज हम ७० वर्षों बाद भी आजादी की वास्तविकता को समझकर उसका सम्मान कर रहे हैं? आलम तो ये है कि यदि स्कूलों तथा सरकारी दफ्तरों में १५ अगस्त न मनाया जाए और उस दिन छुट्टी न की जाए तो लोगों को याद भी न रहे कि स्वतन्त्रता दिवस हमारा राष्ट्रीय त्यौहार है जो हमारी जिन्दगी के सबसे अहम् दिनों में से एक है।

एक सर्वे के अनुसार ये पता चला कि आज के युवा को स्वतन्त्रता के बारे में सबसे ज्यादा जानकारी फिल्मों के माध्यम से मिलती है और दूसरे नम्बर पर स्कूल की किताबों में जिसे सिर्फ मनोरंजन या जानकारी ही समझता है। उसकी अहमियत को समझने में सक्षम नहीं है। ट्विटर और फेसबुक पर खुद को अपडेट करके और आर्थिक आजादी को ही वास्तविक आजादी समझ रहा है। वेलेंटाइन डे को स्वतन्त्रता दिवस से भी बड़े पर्व के रुप में मनाया जा रहा है।

आज हम जिस खुली फिजा में सांस ले रहे हैं वो हमारे पूर्वजों के बलिदान और त्याग का परिणाम है। हमारी नैतिक जिम्मेदारी बनती है कि मुश्किलों से मिली आजादी की रुह को समझें। आजादी के दिन तिरंगे के रंगों का अनोखा अनुभव महसूस करें इस पर्व को भी आजाद भारत के जन्मदिवस के रुप में पूरे दिल से उत्साह के साथ मनाएँ। स्वतन्त्रता का मतलब केवल सामाजिक और आर्थिक स्वतन्त्रता न होकर एक वादे का भी निर्वाह करना है हम अपने देश को विकास की ऊँचाईयों तक ले जायेंगे।

भारत की गरिमा और सम्मान को सदैव अपने से बढ़कर समझेंगे। रविन्द्रनाथ टैगोर की कविताओं से कलम को विराम देते हैं-

हो चित्त जहां भय-शून्य, माथ हो उन्नत
हो ज्ञान जहाँ पर मुक्त, खुला यह जग हो

घर की दीवारें बने न कोई कारा
हो जहां सत्य ही स्रोत सभी शब्दों का
हो लगन ठीक से ही सब कुछ करने की
हों नहीं रूढ़ियाँ रचती क ई मरुस्थल
पाये न सूखने इस विवेक की धारा

हो सदा विचारों, कर्मों की गतो फलती
बातें हों सारी सोची और विचारी
हे पिता मुक्त वह स्वर्ग रचाओं हममें
बस उसी स्वर्ग में जागे देश हमारा
सौजन्य : ऋषि कुमार आर्य, रायगढ़

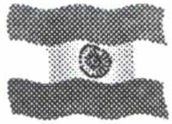

युवाओं की आजादी

अमर शहीदों की लहू की, कीमत ही ना जानी है।
हम आजाद हुए लेकिन, आजादी ना पहचानी ॥

बचपन आज शहीद हो रहा, क्रिकेट के मैदानों पर,
और बुढ़ापा खांस रहा है, मदिरा की दुकानों पर,
विलासिता की फिल्म देखने बैठी हुई जवानी है ॥
हम आजाद हुए ...... ॥

मिली सभ्यता बड़े घरों की, ऊंची ऐड़ी पर चलते,
आज नग्नता वक्ष चढ़ी है, गोदी में पलते-पलते,
कितनी आजादी पाई, और कितनी की मनमानी ॥
हम आजाद हुए ...... ॥

विद्या की अर्थी होते हैं, कालेजों स्कूलों में,
कफन ज्ञान का दफन हुआ, वर्तमान की मूलों में,
गुरु-गोविन्द नशे में दोनों, बढ़िया नींव रखानी है ॥
हम आजाद हुए ...... ॥

मरने के रस्ते-सस्ते, पर राह मिली ना जीने की,
किस्मत भी महंगी पड़ती, आज कीमत घटी पसीने की,
मजदूरी की बेटी चिथड़े पहने हुई सयानी है ॥
हम आजाद हुए ...... ॥

यौवन की पूंजी पाकर भी, हमने सब कुछ खोया है,
निर्धन को फूटपाथ दिया, पैसा कुर्सी पे सोया है,
यह सब तो पहले भी था, ये झांकी रही पुरानी है ॥
हम आजाद हुए ...... ॥

इस आजादी से पहुंचे हम, गहरे और रसातल में,
माटी की अब खायें, तो भारत बदलेंगे पल में,
सुनो युवाओं ! कदम बढ़ाओं ! मौसम अब तूफानी है ॥
हम आजाद हुए ...... ॥

रचयिता : डॉ. वेदप्रकाश व्यास, व्यास मेडिको, गैरतंग, जिला-रायसेन (म.प्र.)

संस्कृति चिन्तन

जब तक वेद व्यास न होगा, कोई तुलसीदास न होगा,
परम्परा का भास न होगा, तब तक बन्धु विकास न होगा।
अन्तर की धूमिल अरुणाई, तन्द्रामय जब तक तरुणाई,
मरे हुए मन के मंदिर में, भारत माँ का वास न होगा।

छत्तीसगढ़ प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा एवं "अग्निदूत" परिवार की ओर से छत्तीसगढ़ के समस्त प्रदेशवासियों को स्वतन्त्रता दिवस की हार्दिक शुभकामनाएँ

सांस्कृतिक

यज्ञों के द्वारा जीवन को स्वर्गमय बनावें.

- डॉ. अशोक आर्य

यज्ञ पर्यावरण की शुद्धि का सर्वोत्तम साधन है। जहां प्रतिदिन यह यज्ञ होते हैं, वहां का वातावरण शुद्ध पवित्र हो जाता है। रोगाणु नष्ट हो जाते हैं तथा सब प्रकार के कष्ट क्लेषों से मुक्त होकर प्राणी का जीवन स्वर्गिक आनन्द से भर जाता है। इस बात को मन्त्र द्वारा इस प्रकार स्पष्ट किया जा रहा है -

भुताय त्वा नारातये स्वरभिविख्येषं दृ ँ हन्तां दुर्याः।
पृथिव्यामुर्वन्तरिक्षमन्वेमि पृथिव्यास्त्वा नाभौ सादया,
म्यादित्याऽउपस्थेऽग्ने हव्य ँ रक्षा ॥ यजुय १.११ ॥

अर्थात् मन्त्र में यज्ञ शेष के महत्व को दर्शाया गया था। इसमें बताया गया था कि यह न केवल प्रसाद ही है बल्कि सुख समृद्धि को बढ़ाने वाला होता है। इसका ही विस्तार करते हुए यहां सात बिन्दुओं पर प्रकाश डालला है, मन्त्र बता-रहा है कि

(१) त्याग भाव से भोगो :- मन्त्र यह कह रहा है कि मैं तुझे प्राणी मात्र के हित के लिए ग्रहण करता हूँ। मन्त्र ने इस प्रकार प्रकट किया है कि हम जो भी कार्य करते हैं उसमें सार्वजनिक हित की बात होना चाहिए। केवल एक व्यक्ति का जिसमें हित होता है ऐसा काम करने का कोई लाभ नहीं है। इस लिए ही मन्त्र कह रहा है कि "मैं तुम्हें प्राणी मात्र के लिए ग्रहण करता हूँ अर्थात् जीव को सदा प्राणी मात्र के हितार्थ ही कार्य करना चाहिये। मन्त्र आगे उपदेश देता है कि मैं तुझे इसलिए ग्रहण नहीं कर रहा कि मैं तुझे कुछ देना नहीं चाहता। मैं तुझे वह सब कुछ देना चाहता हूँ जिसकी तुझे आवश्यकता है। मैं तुझे ग्रहण ही देने के लिए कर रहा हूँ। न देने का तो प्रश्न ही पैदा नहीं होता। मैने तुझे ग्रहण किया है तो इसलिए कि तेरे अन्दर परोपकार की भावना है, तेरे अन्दर दूसरों की सेवा, दूसरों की सहायता की भावना है। तेरे अन्दर यज्ञ की भावना है। इसका भाव ही परोपकार है, दूसरों की सहायता होता है। सहायता भी ऐसी कि हम जिसकी सहायता कर रहे हैं, उसको हम जानते ही नहीं, इसलिए उस पर कभी किसी प्रकार का एहसान न जता सके। यह ही कारण ही कि हम किसी को भी भोग के लिए योग के लिए ही ग्रहण करते हैं, अपने मित्रों की श्रेणी में रखते हैं।

प्रभु ने हमारे भोग के लिए जो भी पदार्थ बनाए हैं, जो भी फल फूल या वनस्पतियां पैदा की हैं, वह सब जीव मात्र के लिए हैं। उनका हम उपभोग अवश्य ही करें, किन्तु मन्त्र आदेश दे रहा है कि हम इन भोगों को त्याग भाव से भोगें न की स्वार्थ भाव से। भाव यह है कि प्रभु ने हमारे उपभोग के लिए यह जो फल पैदा किये हैं, यह जो फूल पैदा किये हैं, यह जो वनस्पतियां पैदा की है, यह सब जीव मात्र के उपभोग के लिए हैं। जितना उदर पूर्ति के लिए आवश्यक है। हे जीव ! उतना ही तेरा है, उतने का ही उपभोग कर, इतने से ही त्रप्ति कर। शेष जो कुछ है, वह अन्य प्राणियों के लिए है, लालच मत कर, इसे संग्रह न कर।

(२) यज्ञमय जीव से सर्वत्र स्वर्ग मिलता है : यह यज्ञ ही है कि जो सबका कल्या करता है। सब को सुखी बनाता है तथा स्वर्गिक आनन्द देता है। इससे मनुष्य का ही नहीं जीव-जन्तुओं का भी पोषण होता है। परोपकार का नाम यज्ञ है। दूसरे की सेवा का नाम यज्ञ है। इसलिए ही तो कहा गया है कि प्रतिदिन यज्ञ करता है उसके सब और स्वर्ग ही स्वर्ग होता है। उसके आसपास का पर्यावरण शुद्ध व पवित्र हो जाता है। रोग कीटाणु नष्ट हो जाते हैं। जब व्यापारियों का नाश हो जाता है तो शेष रहा सुख। बस यह ही उसे मिलता है। इसका नाम ही स्वर्ग है। अतः यज्ञशील प्राणी को सदा स्वर्गिक आनन्त मिलता है।

यज्ञ करने वाले प्राणी का उभयलोक सदा कल्याण कारक होता है। हम जानते हैं कि जब वस्तुओं तथा राक्षसों में उत्तमता के लिए प्रतिस्पर्धा हो गयी तो परमपिता ने राक्षसों के हाथ कुहनी के पास से बंधा दिये ताकि मुंडे नहीं तथा उनके सामने खाना परोस दिया और खाने का आदेश दिया। राक्षस तो होते ही राक्षस हैं। वह अपना भोजन दूसरे को कैसे खिलाने का साहस करते ? दूसरे से सहयोग की तो

उनमें कभी भावना ही नहीं होती। बस भोजन का ग्रास उठाया तथा ऊपर ले जा कर अपने मुख के सामने कर के छोड़ दिया। परिणाम स्वरुप कहीं कुछ थोड़ा सा मुंह में गया। शेष का कुछ भाग गालों पर गया, सब आंखों में, कुछ कानों में। इस प्रकार कोई लंगूर बन गया, कोई कुत्ता। इन्हें देखने वाले हंसने लगे।

जब इस प्रकार से ही देवों को बांध कर भोजन दिया गया तो वह देव लोग एक दूसरे के सामने बैठ गए तथा एक दूसरे को भोजन करवा कर अपने आप को भी तृप्त किया तथा दूसरों को भी किया और किसी प्रकार की हानि भी नहीं हुई। बस इसका नाम ही यज्ञमय जीवन है। इसका नाम ही स्वर्गिक आनन्द है। इसलिए वेद मन्त्र कहता है कि केवल अपने तक ही सीमित न रहो बल्कि अन्यों के सुखमय जीवन बनाने के साधन भी पैदा करो।

(३) यज्ञमय जीवन से हमारे शरीर, मन व मस्तिष्क प्रबल हों : इस यज्ञ से हमारे परिवार का संगठन होने से हमारे घर मजबूत हो जाते हैं। हमारा सामाजिक जीवन अटूट हो जाता है। जहां प्रतिदिन यज्ञ होता है, वहां भोग की प्रवृत्ति आ ही नहीं पाती। क्योंकि यह भोग प्रवृत्ति का विनाशक होता है। प्रतिबन्दक होता है। इस प्रवृत्ति के प्रतिबन्ध से ही हमारे शरीर, हमारे मन तथा हमारे मस्तिष्क दृढ़ बनते हैं। जब घर में यज्ञमय भावना न होगी तो परिवार के सदस्य अपने स्वार्थ को ही सामने रखेंगे, जिससे घर में सदा लड़ाई-झगड़ा, कलह-क्लेष ही बना रहेगा। ऐसी अवस्था में चित्त का शान्त होना, प्रसन्न होना तो सम्भव ही नहीं होता, सबकी खुशी गायब हो जाती है। इसका नाम ही नरक है। इस अवस्था में अन्त कैसे होता है ? पूरे परिवार के नाश के रुप में।

(४) यज्ञवृत्ति से हृदय विशाल बनता है : प्रभु कहते हैं कि मैं उस व्यक्ति को ही प्राप्त होता हूं जिसमें यज्ञवृत्ति हो। हमारा यह तो शरीर है वास्तव में यह पृथिवी के समान है। हम इसे ऐसा भी कहते हैं कि इस शरीर में हमने प्रत्येक शक्ति का विस्तार किया है। प्रभु कहते हैं कि मैं उस विशाल हृदय रुपी अन्तरिक्ष को हमारी इस यज्ञ रुपी अनुकूलता के कारण, उत्तमता के कारण प्राप्त करता हूँ। भाव यह है कि इसके कारण जब पवित्रता आ जाती है तो वह प्रभु उसमें आकर विराजमान हो जाते हैं। इतना ही नहीं यज्ञ की इस भावना से हमारे हृदयों में विशालता आती है। परोपकार व दूसरे के सहयोग की इच्छा शक्ति आती है।

(५) यज्ञ से ही हम फलते फूलते हैं : जो जीव यज्ञमय जीवन वाला होता है उसके लिए प्रभु प्रेरणा देते हुए कहते हैं कि हमारे इस मानव शरीर रुपी भवन्की नाभी यह यज्ञ ही है। यही इसका केन्द्र है तथा परमपिता परमात्मा ने ही हमें इसमें स्थापित किया है। गीता भी तो इस तथ्य पर ही प्रकाश डालते हुए कह रही है कि इस यज्ञ से तुम फलो फूलो। तुम्हारी सबो मनोकामनाओं को पूर्ण करने वाला हो। भाव यह कि इससे ही सब कामनाएँ, सब इच्छाएं पूर्ण होती है।

(६) आदीन व दिव्य गुणों वाले बनें : आदीनता से युक्त बनें। आदीन पुरुष मैं तुझे अदिति को सौंप रहा हूँ। तूने जो कल्याण के कार्य किए हैं, उसके कारण तेरा अदिति के पास निवास होना आवश्यक है। इस कारण ही मैं तुझे अदिति को सौंप रहा हूँ। उसकी गोद में दे रहा हूँ। इस अदिति की गोद में जा कर तू आदीन बनता है। इसकी गोद में जा कर तू दिव्य गुणों का स्वामी हो जाता है। हां ! जब तू हीन भावना से ऊपर उठ गया है तो इसका भाव यह नहीं कि मैं अभिमानी बनकर, घमण्डी बन जाऊँ। इसका भाव है कभी किसी के आश्रित न रहना, रोगी न रहना आदि। प्रभु कहते हैं कि यह यज्ञमय इससे बचने से ही मेरे में आदीनता तथा विनीतता की सुन्दर भावना आ जाती है। इस शरीर में इनका समन्वय हो जाता है।

(७) यज्ञ से हम कभी अलग न हों : प्रभु इस मन्त्र के माध्यम से हमें उपदेश करते हुए मन्त्र के अन्तिम भाग में हमें उपदेश कर रहे है कि हे जीव ! तू आगे बढ़ने वाला है। तूने इसका स्वयं प्रयोग करके इसके लाभ को भी आत्मसात कर लिया है। तो भी तू सदा इस बात को याद रखना कि तूने इस हव्य की रक्षा करनी है। इसे बनाए रखना है। तूने अपने जीवन को खूम यज्ञमय बनाया है। इसे यज्ञमय ही बनाय रखना। इस वाक्य को अपने लिए आदर्श वाक्य ही बनाए रखना। इस आदर्श वाक्य के आधार पर ही तू सदा परोपकार करते रहना, दूसरों की सहायता करते रहना, दूसरों का मार्गदर्शन करते रहना तथा यज्ञमय जीवन से कभी अलग मत होना।

पता : १०४, शिप्रा अपार्टमेंट, कौशांबी-२०१०१०.
जिला गाजियाबाद (उ.प्र.)

ज्वलन्त प्रश्न

अब करना होगा इनका इलाज

- डॉ. रवि प्रभात

काफी समय से राष्ट्रीय विमर्श से गायब रहे नक्सली सुकमा में लगातार हमलों के बाद चर्चा के केन्द्र में हैं। नक्सलवादियों की यही रणनीति है कि बीच-बीच में इस तरह की क्रूर हिंसात्मक गतिविधियों द्वारा देश को झकझोरते रहो। नक्सली इस तरह के क्रियाकलापों द्वारा जहां सरकार के खिलाफ अपनी अनैतिक लड़ाई को जीवित एवं सक्रिय दिखाना चाहते हैं, वहीं अपने शहरी सफेदपोश थिंकटैंक को भी अपनी क्षीण होती शक्ति का एहसास न होने देने का प्रयास करते हैं। नक्सलवादियों की शैतानी हरकतों पर पर्दा डालने के लिए छदम् बुद्धिजीवी (जिन्हें शहरी नक्सली कहना ज्यादा उचित होगा) भिन्न-भिन्न तरह सैद्धान्तिक मुखौटे पहनने का स्वांग भरते हैं। ये लोग सरकारी खर्चों पर सेमिनार करके, प्रेसवार्ता करके, नक्सलियों के साहित्य का वितरण करवाकर, उनके लिए सहानुभूति बटोरकर, विभिन्न क्रियाकलापों द्वारा अपने इस कुत्सित अभियान को अंजाम देते हैं।

आम भारतीय जनमानस को इस विषय में बेहद सतर्क और जागरुक रहने की आवश्यकता है। नक्सलवादी सिद्धांतविहीन है। ये लोग अपने नापाक सिद्धान्तों की आड़ में जनजातीय महिलाओं के यौन शोषण को अंजाम दे रहे हैं, जनता से अवैध धन उगाही करना इनका प्रमुख धंधा है। बूढ़ों-बच्चों को अपनी ढाल बनाकर पूरे क्षेत्र में स्वघोषित तानाशाही के जरिये अकूत धन संपत्ति एकत्रित करना चाहते हैं।

नक्सलियों का एक ही ध्येय वाक्य है, सत्ता बंदूक की नली से निकलती है अर्थात् इनकी दृष्टि में हिंसा से ही सत्ता प्राप्ति संभव है। इसीलिए ये शहरी आकाओं की सरपरस्ती में अपने सिद्धान्तों को गढ़कर भारतीय शासन के खिलाफ अनैतिक लड़ाई लड़कर अपने ही लोगों का खून बहा रहे हैं। ये लोग खुद को जिनका हमदर्द दर्शाते हैं, उन्हीं वनवासियों का भरपूर शोषण करते हैं और यह सब शहरों में बैठे तथाकथित बुद्धिजीवियों के इशारे पर हो रहा है। शहरी नक्सलियों का खूंखार नक्सलियों से संबंध भी अब तो प्रमाणित होने लगा है। दिल्ली वि.वि. के जी.एन. सांईबाबा को सजा मिलना इसका उदाहरण है, जो नक्सलियों के थिंक टैंक के तौर पर लंबे समय से राजधानी में रहकर सक्रिय था। अभी भी कई ऐसे तत्व हैं जो अंदह ही अंदर तंत्र को तोड़ने का काम कर रहे हैं।

रोचक जानकारी

१. विश्व का सबसे अमीर देश स्वीट्जरलैण्ड है।
२. सऊदी अरब में एक भी नदी नहीं है।
३. विश्व का सबसे दानी आदमी अमेरिका का राकफेलर हैं, जिसने अपने जीवन में सार्वजनिक हित के लिए लगभग ७५ अरब रुपये दान में दिए।
४. सबसे महंगी वस्तु यूरेनियम है।
५. दक्षिण आस्ट्रेलिया में आयर्स नामक पहाड़ी प्रतिदिन अपना रंग बदलती है .
६. विश्व में रविवार को छुट्टी सन् १८४३ से शुरु हुई थी।
७. सारे संसार में कुल मिलाकर २७९२ भाषाएँ हैं।
८. फ्रांस ऐसा देश है जहां मच्छर नहीं होते हैं।
९. दक्षिण अफ्रीका में कोबरा नामक वृक्ष के पास इंसान के जाते ही उसकी डालियां उसे जकड़ लेती है और तब तक नहीं छोड़ती जब तक वो प्राण न त्याग दे।
१०. नार्वे देश में सूरज आधी रात में चमकता है।

यात्रा संस्मरण

हिमाचल के राजभवन में दो दिन

- आचार्य ज्ञानेश्वरार्यः

२५ मई २०१ को हिमाचल प्रदेश के राज्यपाल श्रीयुत् आचार्य देवव्रत जी से मिलने के लिए शिमला के राजभवन में पहुंचा। यह राजभवन लगभग १७५ वर्ष पूर्व तत्कालीन अंग्रेज ने अपने आवास के लिए बनाया था। इसमें दर्जनों कमरे हैं जो अत्याधुनिक, सभी सुविधाओं से युक्त है। इसमें १०० के लगभग सरकारी अधिकारी एवं कर्मचारी हैं, जो राजभवन में आने वाले अतिथियों राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, राज्यपालों तथा अन्य विभिन्न विभागों के मंत्रियों अधिकारियों के आवास, भोजन आदि सभी प्रकार की सुविधाों का पूरा पूरा प्रबंध करते हैं।

जैसा कि मैं पढ़ता व सुनता आया था कि राष्ट्रपति की तरह राज्यपाल भी एक सफेद हाथी की तरह या रबर स्टैम्प की तरह एक फालतू (अनावश्यक एम.एल.ए. मंत्रियों की) पदवी है जो मात्र हस्ताक्षर करने, प्रतिज्ञा दिलवाने, सभाओं में उपस्थित होने तक के ही काम होते हैं। अपनी और राजकार्यों में कोई प्रत्यक्ष हस्तक्षेप नहीं कर सकता न कोई योजना/कानून विशेष बना सकता है। निष्क्रिय, अकर्मण्य व्यक्ति होता है जिस पर करोड़ों रुपये व्यय होते हैं। किन्तु दो दिनों में कुछ घण्टों की चर्चा, विचार विमर्श, प्रश्नोत्तर आदि के माध्यम से जो जो बातें सामने आयीं उनको सुनकर मैं तो स्तब्ध/आश्चर्य चकित हो गया। उनकी कुछ बातों को जन सामान्य के लिए प्रस्तुत कर रहा हूँ। जिन्हें पढ़ सुनकर वे हर्षित होंगे, उत्साह व प्रेरणा मिलेगी।

आचार्य देवव्रत जी ने राजभवन में आते ही राज्य के समस्त उच्चाधिकारियों से परिचय प्राप्त करने, उनके कार्य विभाग, उनके दायित्व, अधिकार, समस्याएं व प्रश्नोत्तर आदि से संबंधित एक बैठक का आयोजन किया। इस बैठक से आचार्य जी को सहसा ही अधिकारियों की योग्यता, मानसिकता, भावनाओं से संबंधित जानकारी मिल गयी। जैसा कि राजनीति में होता है, विरोधियों ने, विपक्षियों ने इस बैठक की प्रतिक्रिया में कपोल-कल्पित, मनगढ़न्त मिथ्या धारणाएँ बनाकर समाचार पत्रों में प्रकाशित करा दी। किन्तु बैठक में विद्यमान बुद्धिमानों, निष्पक्ष अधिकारियों तथा समाज के प्रतिष्ठित सज्जनों ने इन विरोधियों के विरोध में आवाज उठाई तथा आचार्य की प्रशंसा की और धन्यवाद भी प्रकट किया।

राजभवन में आते ही एक महत्वपूर्ण कार्य यह किया कि अंग्रेजों के काल से चली आ रही शराब, मांस की पार्टी वाले भवन को उखाड़कर वहां पर एक सुन्दर आकर्षक यज्ञशाला का निर्माण कराया उसके उद्घाटन के कार्यक्रम में भूतपूर्व तथा वर्तमान मुख्यमंत्रियों, विधानसभाओं के सदस्यों, मंत्रियों तथा अन्य समस्त राज्य के गणमान्य व्यक्तियों को आमंत्रित किया और उन्हें यजमान बनाया। वेदमन्त्रों के शुद्ध पाठ द्वारा यज्ञ कराया तथा भजनोपदेशकों से भजन भी कराए। इसका राज्य की जनता पर इतना अद्भुत प्रभाव पड़ा कि आचार्य जी उनके लिए श्रद्धास्पद बन गये।

विरोधियों, स्वार्थियों, अज्ञानियों ने इसका भी विरोध किया कि राजभवन में यज्ञशाला बनाना अनुचित है, यह धर्मनिरपेक्षता के विरुद्ध है तो उनको उत्तर दिया गया कि जब राष्ट्रपति भवन में मस्जिद, गुरुद्वारा बन सकता है तो राजभवन में यज्ञशाला क्यों नहीं बन सकता इस तर्क से भी विरोधी निरुत्तर हो गये। आचार्य जी को जब भी खाली समय मिलता वे गाड़ी में फावड़ा, तसला, झाड़ू बाल्टियां लेकर निकटस्थ के गांवों में कर्मचारियों के साथ चले जाते और सफाई अभियान शुरु कर देते। गांव, नगर की जनता और वहां के राज्य कर्मचारी भी आकर राज्यपाल जी के साथ सफाई कार्य में लग जाते। इसका भी जनता पर अच्छा प्रभाव पड़ा वहां सर्वत्र उनकी स्तुति, प्रशंसा होने लगी, और आदर भाव भी होने लगा।

गुरुकुलीय शिक्षा से निर्मित, वैदिक विद्वान्

निष्क्रिय, अकर्मण्य रहने वाले नहीं होते हैं वे कुछ न कुछ समाज, गांव, नगर, राज्य के लिए कार्य करते ही रहते हैं। आचार्य जी ने गांवों का भ्रमण प्रारम्भ किया गांव वालों से समस्या सुनी स्वयं भी अनुभव किया और अनुभव किया कि पर्याप्त वर्षा वाला प्रदेश होते हुए भी पानी सारा नीचे मैदानों में बह जाता है, गांव में खेती के लिए पानी नहीं बचता है, न पीने के लिए। अतः अपने गांव वालों को सुझाव दिया कि जहां पर गांव के आस पास नीची भूमि है वहां पर पानी एकत्रित करने के लिए चक डेम बनाये जाये, जिससे सिंचाई के लिए पानी मिलेगा, पानी का स्तर ऊपर होगा और पीने के लिए भी पानी उपलब्ध होगा।

गांवों में भ्रमण करते हुए लोगों को घरों के आगे, पीछे फैक्ट्रियों के खाली स्थानों, पर्वतों पर वृक्ष लगाने की भी प्रेरणा देते हैं कम से कम एक वर्ष में एक व्यक्ति एक एक वृक्ष लगाये तो अनायास ही लाखों, करोड़ों वृक्ष लग जायेंगे। गांव के लोगों को पुत्री उत्पन्न होने पर घर में गीत गाने, समारोह मनाने तथा गांव भर में मण्डली बनाकर वाद्ययन्त्रों के साथ गीत भजन गाते हुए खुशी का प्रदर्शन करें। जिससे बेटियों के प्रति श्रद्धा प्रेम बढ़ेगा। ऐसा सन्देश देते हैं। फैक्ट्री के स्वामियों को, दुकानों के मालिकों को, फैक्ट्री के आसपास साफ सफाई रखने, कूड़ा कचरा हटाने, वहां पर कचरा पेटी रखने का भी संकेत करते हैं, उनको बताते हैं कि सफाई होने से सुन्दरता बढ़ेगी, रोग भी समाप्त होंगे, अन्यों को भी प्रेरणा मिलेगी।

राजभवन में यदा कदा देश भर के राज्यों के पदाधिकारी, राज्यपाल, मुख्यमंत्री आदि तथा राष्ट्रपति आदि भी अतिथि के रुप में आकर निवास करते हैं और राजभवन में शराब, मांस, मछली आदि की मांग भोजन के रुप में करते हैं। मुझे सुखद आश्चर्य लगा कि सभी को यहां तक की राष्ट्रपति जी को भी मांस, मछली परोसने हेतु स्पष्ट मना कर दिया, बाहर से मंगवाकर खाने की प्रार्थना को भी कठोर शब्दों में निषेध कर दिया कि ऐसा बिल्कुल नहीं होगा, "मेरे लिए धर्म, संस्कृति की गरिमा बनाये रखना महत्वपूर्ण है, राज्यपाल का पद कोई महत्व नहीं रखता है।" यह एक साहस निर्भीकता, आत्मबल का ही परिचायक है।

हिमाचल के राज्यपाल को देखकर देश के राज्यपालों के प्रति जो मेरी धारणा बनी हुई थी वह समाप्त हो गई कि ये "मिट्टी के माधो" होते हैं "Show peace" होते हैं। किन्तु आचार्य जी तो किसी अन्य मिट्टी के बने हैं, उनके मन, बुद्धि, विचारों का निर्माण करने वाले चाहे माता-पिता हों या आचार्यगण वे उच्च प्रकृति वाले आदर्श व्यक्ति थे। उनकी आत्मा ऋषियों के दिव्य सन्देशों, सिद्धान्तों, विधि-विधानों नियमों से रंगी हुई है। वे परिस्थितियों के दास बनकर उनसे तुच्छ स्वार्थों के लिए समझौता करने वालों में से नहीं है। वे अज्ञानी, स्वार्थी, अभिमानी, अधर्मी, पापी व्यक्तियों के आगे झुकने वालों में से नहीं है। उनके लिए धर्म, सत्य, न्याय, आदर्श महत्वपूर्ण हैं, धन, सत्ता, प्रतिष्ठा, सम्मान तुच्छ हैं। ऐसे दिव्य गुणों, भावनाओं, संस्कारों, कर्मों से युक्त आचार्य पर हमें गर्व है। हम उनकी प्रगति और उन्नत भविष्य की कामना करते हैं, जिससे समाज राष्ट्र में वैदिक धर्म का प्रचार प्रसार हो सके।

- वानप्रस्थ साधक आश्रम, रोजड़ गुजरात

एक वर्ष तक निरन्तर चलने वाला एक अद्भुत

"अग्निहोत्र प्रशिक्षण केन्द्र"

आपको जानकर अति प्रसन्नता होगी कि सर्वकल्याण धर्मार्थ न्यास (पंजी.) पानीपत (हरियाणा) के तत्वावधान में एक दिव्य निरन्तर एक वर्षीय (३६५ दिन १२ घण्टे प्रतिदिन) चलने वाला अग्निहोत्र (यज्ञ) प्रशिक्षण केन्द्र आर्यसमाज बसई (गुरुग्राम) के प्रांगण में एक अक्टूबर २०१७ से प्रारम्भ हो रहा है। इसका शुभारम्भ पूज्य आचार्य श्री ज्ञानेश्वरार्य जी रोजड़ (गुजरात) द्वारा होगा और इन्हीं के निर्देशन में लगातार वर्षपर्यन्त चलता रहेगा। यह अद्भुत कार्यक्रम विश्व में गुजरात के बाद हरियाणा में दूसरा आयोजन होने जा रहा है। शीघ्र निकट भविष्य में इसके पूर्ण वर्ष तक चलने की योजना का प्रचार-प्रसार प्रारम्भ हो जाएगा।

आयोजक :

सर्वकल्याण धर्मार्थ न्यास (पंजी.) पानीपत

स्वामी समर्पणानन्द - व्यक्ति नहीं विचार

१ अगस्त जयन्ती

- स्वामी विवेकानन्द

अशेषसेमुषी सम्पन्न तथा अलौकिक प्रतिभा के धनी स्वनाम धन्य पूज्य स्वामी समर्पणानन्द जी की शताब्दी उन्हीं के द्वारा संस्थापित प्रभात आश्रम, मेरठ में मनायी गयी। इस अवसर पर वेद शोध संगोष्ठी सम्पन्न हुई, अनेक विश्वविद्यालयों के मान्य विद्वानों ने अपने शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किए, ब्रह्मचारियों ने स्वरचित संस्कृत पद्यों से पूज्य स्वामी जी को श्रद्धाजंलि समर्पित की। इस प्रकार यह कार्यक्रम सम्पन्न हो गया।

मेरे मस्तिष्क में प्रश्न उत्पन्न हुआ- जिस व्यक्ति की हम जन्म शती मना रहे हैं, क्या वह केवल एक सुशिक्षित व्यक्ति मात्र था अथवा कुछ और भी ? बहुत ऊहापोह एवं चिन्तन के पश्चात् मैं इस निर्णय पर पहुंचा कि वह केवल व्यक्ति मात्र नहीं किन्तु विचार थे। उनके लिखित ग्रन्थ- कायाकल्प, पञ्चयज्ञ प्रकाश, गीता, भाष्य, ऋग्वेद मण्डल मणिसूत्र, शतपथ ब्राह्मण भाष्य, ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद का आंशिक भाष्य, किसकी सेना में भर्ती होगे, कृष्ण या कंश की ? सप्त सिन्धु सूक्त, वेदों के सम्बन्ध में क्या जानों क्या भूलों आदि ग्रन्थों का आलोडन,परिशीलन करने से स्पष्ट हो जाता है कि इन ग्रन्थों का लेखक केवल असाधारण विद्वान् ही नहीं अपितु अपराजेय ऊहा, विलक्षण प्रतिभा रहस्य उद्घाटिनी मेधा एवं अतर्क्य पाण्डित्य का धनी था।

वे कोरे अक्षरों के पण्डित ही नहीं अपितु स्वलक्ष्य निर्धारित निर्भ्रान्त विचारधारा से परिपूर्ण भी थे। उनका दृष्टिकोण तथा लक्ष्य मध्यान्ह भास्कर के देदीप्मान प्रकाश में हस्तामलकवत् प्रत्यक्ष था। वे बाल्यकाल से ही तातस्य कूपोऽयमिति में आस्था रखने वाले नहीं थे। सामान्य से सामान्य बातों को भी जब तक मन-मस्तिष्क स्वीकार नहीं कर ले, तब तक उसे अपनाने में उन्हें संकोच होता था। बाल्यकाल के गुरुकुलीय जीवन में गले से यज्ञोपवीत निकाल फेक देने वाली घटना इसका ज्वलन्त प्रमाण है। स्वामी श्रद्धानन्द जी के द्वारा यह कहने पर कि यह गुरुकुल का अनुशासन है। इसका तुम्हारी आस्था से सम्बन्ध नहीं। यदि तुम्हें गुरुकुल में पढ़ना है तो यज्ञोपवीत धारण करना ही होगा। उन्होने अनुशासन मानकर यज्ञोपवीत पुनः धारण कर लिया किन्तु उसने अपनी आस्था का सम्बन्ध स्थापित करने के लिए उनका अहर्निश यज्ञोपवीत धारण करने के विषय में चिन्तन करना उनकी जागरूकता का उत्कृष्ट उदाहरण है।

उनके ग्रन्थ का एक-एक वाक्य तथा उनकी स्थापना या मान्यता आर्ष परम्परा की पोषक तथा आर्ष परम्परा से उद्भूत है। उनके सम्बन्ध में यह कहना यथोचित होगा कि वे आर्ष परम्पराओं के मूर्तिमान् स्वरूप थे। स्वामी समर्पणानन्द जी के विषय में इस प्रकार कहते हुये ये लोग भूल जाते हैं कि इस दृष्टि से ये ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों को भी कल्पना-प्रसूत कह रहे होते हैं क्योंकि ऋषि दयानन्द ने भी यजुर्वेद भाष्य में उक्त प्रकार से ही संगति लगाने का प्रयास किया है।

आज हम उनके जन्मदिवस के अवसर पर श्रद्धाजंलि अर्पित करते हुए यह संकल्प लें तो श्रेयस्कर होगा कि हम भी उन्हीं की भांति गंभीर अध्येता बनकर अनन्य निष्ठा से आर्ष परम्पराओं के प्रचारक एवं प्रसारक बनेंगे। इस समय अन्य समस्त विचारधाराओं के असफल हो जाने पर इसी वैदिक आर्ष विचारधारा की ओर लोगों की दृष्टि लगी हुई है। आवश्यकता बस इस बात की है कि हम आलस्य प्रमाद छोड़कर अदम्य उत्साह एवं धैर्य के साथ इसके प्रसार में लग जायें।

हे विद्यानिधे ! तेरी प्रतिभा कुछ अद्भुत और निराली थी।
प्रतिपक्षी जिससे कांप उठे, वह बुद्धि तेरी आली थी ॥
जब वक्ता बन कर बोले तुम, मानों सरस्वती बोल रही।
वेदों के गूढ़ रहस्यों को, अपनी बुद्धि से खोल रही ॥

-प्राचार्य - गुरुकुल प्रभात आश्रम, मेरठ

छत्तीसगढ़ के पुरोधा-स्वामी दिव्यानन्द सरस्वती

पुण्य स्मरण

स्वामी दिव्यानन्द सरस्वती 'आटा' नामक गांव में आर्य सेनानी रघुवर दयाल की धर्मपत्नी पराधणा पतिव्रता पत्नी रामप्यारी के गर्भ से **१५ अगस्त १९०६** को हमारे चरित्रनायक का अवतरण हुआ। समयानुसार बालक का नामकरण संस्कार कराया गया और पिता ने उसका 'माता प्रसाद' रखा। तब कौन जानता था कि माता का यह प्रसाद ही आगामी जीवन में दिव्य-आनन्द से पूर्ण, राष्ट्र और धर्म का महान् सेवक होगा ?

आगे चलकर इस सात्विक धर्मनिष्ठदम्पती की दो पुत्रियां भी हुई। माता-पिता के एकमात्र पुत्र एवं दो बहनों के लाडले भा माता प्रसाद हृष्ट-पुष्ट, गौरवपूर्ण एवं कुशाग्र बुद्धि के धनी थे। कम पढ़ी-लिखी किन्तु सन्तान निर्माण के लिये संचेत माता रामप्यारी अपने प्रियपुत्र को सुसंस्कृत करने लगी। फौजी अनुशासन तथा महर्षि दयानन्द सरस्वती के विचारों से प्रभावित पिता अपने प्राणप्रिय पुत्र को सर्वविधगुणों से सम्पन्न करने में लग गये। खेल-खेल में माता प्रसाद को सत्यार्थ प्रकाश की सीख दी जाने लगी। पांच वर्ष की अवस्था तक पिता ने गायत्री मंत्री और संध्या के कुछ मंत्र रटा दिये साथ ही मनोरंजक ढंग से लिखना-पढ़ना भी सिखाया। वेदारंभ तथा यज्ञोपवीत संस्कार के साथ बालक माता प्रसाद विद्यालय में प्रविष्ट हुए।

मध्यप्रदेश एवं छत्तीसगढ़ आगमनम्

आर्य प्रतिनिधि सभा म.प्र. व विदर्भ के अधिकारी वृन्द उच्चकोटि के उपदेशक का अभाव महसूस कर रहे थे। उन्होने दिल्ली जाकर सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के तत्कालीन प्रधान पूज्यपाद स्वामी ध्रवानन्द सरस्वती से एक महोपदेशक को मध्यप्रदेश भेजने के लिये अनुरोध किया। पूज्य प्रधान जी ने अनुरोध स्वीकार कर स्वामी दिव्यानन्द सस्वती को मध्यप्रदेश में वैदिक नाद गुंजाने प्रेरित किया। गुरुदेव की प्रेरणा को शिरोधार्य कर स्वामी दिव्यानन्द जी महाराज १९५१ में मध्यप्रदेश व विदर्भ पधारे। आर्यावर्त भारत के हृदय स्थल में अवस्थित मध्यप्रदेश व विदर्भ क्षेत्र सर्वथा पिछड़ा हुआ और अविकसित था। अज्ञान-अंधकार की घटाटोप बादल से घिरा यह प्रदेश शिक्षा क्षेत्र में भी पिछड़ा हुआ था। ऐसे प्रदेश में वैदिक धर्म का प्रचार करना लोहे के चने चबाने के समान था। किन्तु हमारे स्वामी भी सामान्य नहीं थे। महान् चिन्तक, तार्किक और सामयिक थे। योगाभ्यासी और वेद के परमभक्त थे। चुनौतियों से स्फूर्ति पाने वाले स्वामी दिव्यानन्द सरस्वती पीछे हटने वाले नहीं थे। मध्यप्रदेश में वेदवाणी का गुंजार आरंभ किया। थोड़े दिनों में समूचे प्रदेश को उन्होंने आत्मसात् कर दिया। प्रभाव इतना पड़ा कि एक ही वर्ष में आर्य प्रतिनिधि सभ म.प्र. व विदर्भ के आजीवन सदस्य स्वीकार कर लिये गये। तत्कालीन सभा प्रधान श्री घनश्यामसिंह गुप्त, स्वामी जी को विद्वत्ता, नम्रता और तेजोमय आभा से अत्यधिक प्रभावित हुए उनसे अनुरोध कर उन्हें वेद प्रचार अधिष्ठाता के पद पर प्रतिष्ठित कर दिया। सचमुच निष्पक्ष जौहरी ही रत्नादि को सही पहचान पाते हैं। श्री गुप्त जी ने सही व्यक्ति को सही पद पर अधिष्ठित कर अपने को ही धन्य किया, अन्यथा तो रेवड़ियाँ बांटने वाले सत्ताधीश, अपने ही चाटुकारों, पाखंडियों अथवा आत्मश्लाषा में रत हिरण्यकश्यपों के कुतर्कों का सामना कर सुदूर गांव देहातों में वेद ही की बात कहने वाले वेदप्रचार अधिष्ठाता होने के योग्य होते हैं। स्वामी दिव्यानन्द जी उस पद के लिये नहींआये थे, अपितु उस पद का सृजन उनके लिये हुआ था। स्वामी जी महाराज की व्याख्यान शैली बड़ी निराली और हृदयग्राही थीं। उनके अन्तस् से निकले शब्द, श्रोता के रोम-रोम को पुलकित कर देते थे। वेद, दर्शन एवं उपनिषदों पर पूर्ण अधिकार पूर्वक वैदिक सिद्धान्तों के मर्म को साधारण जनता के सामने इतनी मनोहारिणी कथा के माध्यम से प्रस्तुत करते कि जनता सुनकर आत्म विभोर हो उठती थी। जन जीवन के लिये उनके उपदेश संजीवनी के समान जीवन दायक होते थे। वे इतने प्रभावी होते थे कि इनसे सर्वथा अनजान और अपरिचित व्यक्ति भी इनके प्रथम दर्शन व श्रवण से इनके ही हो जाते थे। छत्तीसगढ़ में १०० गांवों में आपको पथप्रदर्शक मानने वाले आज भी विद्यमान है।

संकलन : दिव्य दर्पण

आयुर्वेदामृत

लौकी (दूधी) के रस के नियमित सेवन से हृदय रोग पर काबू

- विनोद कुमार सोनी (एक अनुभवी हृदयरोगी)

मैं कई वर्षों से डायबिटीज (शुगर) का मरीज हूं। मेरी शुगर कभी काबू में नहीं रही। नागपुर में मेरा इलाज चलता रहा। मैं दवाईयां बराबर लेता था। लेकिन खाने का परहेज तथा व्यायाम कभी नहीं करता था मुझे ६ माह पहले चलने फिरने से छाती में भारीपन आने लगा, थोड़ा सा वजन उठाने में असमर्थ हो गया, नामी डॉक्टरों के कहने पर मैं टी.एम.टी. टेस्ट करवाया जो स्ट्रांग पाजीटिव आया उन्होने मुझे एन्जोग्राफी करवाने कहा। मेरी एन्जोग्राफी हुई, रिपोर्ट में बताया गया मेरे हृदय को रक्त पहुंचाने वाली नलिकाएँ ७० से ९९ प्रतिशत तक अवरुद्ध हो गई, एक सप्ताह के भीतर बायपास सर्जरी करवाना आवश्यक है। सुनकर मैं तथा मेरा परिवार काफी परेशान हो गयी, मेरी सोचने समझने की शक्ति नष्ट हो गई, मेरा मनोबल दिनोदिन टूटने लगा सर्जरी में लगने वाला खर्च उठाने की मेरी हिम्मत नहीं थी। इसी तरह दो माह निकल गये। इस बीच मैने के.ई.एम. अस्पताल मुंबई में सम्पर्क किया जहां मुझे साठ हजार रु. खर्च बताया गया तथा आपरेशन की तारीख दी गई। इसी बीच मेरे बड़े भाई साहब नवल कुमार जी तथा संतोष कुमार जी सोनी ने मुझे मराठी अखबार की कटिंग भेजी जिसमें लौकी के रस के नियमित सेवन से हृदयरोग पर काबू पाने के बारे में जानकारी दी गई तथा डॉ. कोठारी मुंबई का पता, टेलीफोन नंबर दिया गया था। मैने डॉ. कोठारी से टेलीफोन पर सम्पर्क किया उन्होने मुझे मुंबई मिलने बुलाया। डॉ. कोठारी एम.डी. डी.जी.ओ. है तथा के.ई.एम. अस्पताल में कार्यरत है। उन्होने कैंसर पर किताब लिखी है। अभी दो किताबें लिखने में व्यस्त है। अपने व्यस्त समय से समय निकालकर उन्होने मुझे एक घंटे का जो समय देकर जानकारी दी एवं उनकी बातचीत से मैं ५० प्रतिशत निरोगी हो गया, मेरा आत्मबल बढ़ गया उन्होने कहा बायपास सर्जरी की कोई जरुरत नहीं। निम्न तरीके से लौकी के रस का सेवन करो तथा रोजना घंटा भर तथा सप्ताह में एक दिन तीन घंटे घुमने जाओ। उनके बताये अनुसार मैने प्रयोग किया। मुझे २-४ दिन में ही फायदा महसूस होने लगा। मैंने कई लोगों को बताया, उन्होंने भी प्रयोग किया उन्होंने भी फायदा महसूस किया।

लौकी का रस बनाने की विधि :- शुरु में १०० से १५० ग्राम लौकी छिलके सहित किसकर मिक्सर में डालकर इसमें ५-६ तुलसी के पत्ते, ५-६ पोदीने के पत्ते डालकर रस बनाना। रस को छानकर जितना रस तैयार हो उतना ही पानी मिलाना, स्वाद के लिए थोड़ी पिसी कालीमिर्च तथा सेंधानमक मिलाना। धीरे धीरे २५० ग्राम तक लौकी का रस निकालकर लेना। शुरु में दस्त वगैरह लगे तो चिंता नहीं करना।

रस को लेने की विधि : खाना खाने के आधा घंटे बाद दिन में तीन समय (दोपहर, शाम, रात्रि) ताजा रस निकालकर लेना चाहिए।

परहेज :- सभी प्रकार की खटाई जैसे संतरा, निंबू, इमली, खट्टी दही, छाछ इत्यादि नहीं लेना।

प्रातःकाल घूमना आवश्यक : मैं तीन माह से लौकी के रस का सेवन कर रहा हूँ। रोजाना ६-७ कि.मी. घुमने जाता हूं, दिन भर दुकान में काम करता हूं, २०-२५ किलो तक वजन आराम से उठा सकता हूं। हृदय में किसी भी प्रकार परेशानी नहीं महसूस होती तथा थकान भी महसूस नहीं होता। इस प्रयोग से मेरी शुगर भी काबू में आ गयी, इन्सुलीन का डोज आधा हो गया। मैं अपने आपको स्वस्थ महसूस करने लगा हूँ। हृदयरोगियों को इसका लाभ मिले, मेरे अनुभव को स्वस्थ व्यक्ति भी इसका सेवन कर सकता है।

मुट्ठी में "ताकत"
लेकर बढ़ोगे तो..
"सफलता"
प्रतीक्षा करती मिलेगी

आरोग्य जगत्

होमियोपैथी से मूत्र ग्रन्थियों (किडनी) से उत्पन्न रोगों का उपचार

- डॉ. विद्याकान्त त्रिवेदी
(होमियोपैथिक चिकित्सक)
मोबा. : ९८२६५११९८३, ९४२५५१५३३६

होमियोपैथी के जन्मदाता डॉ. हैनीमेन के अनुसार रोगी के लक्षणों और औषधि के लक्षणों में समानता होना होमियो चिकित्सा का सर्वप्रथम सिद्धान्त है।

किडनी का कार्य - रुधिर (रक्त) विषैले पदार्थों को मूत्र द्वारा बाहर निकाल देने का कार्य मूत्र ग्रन्थियों का है, जिसे हम अंग्रेजी में किडनी कहते हैं, दोनों मूत्र ग्रन्थियों से दोनों ओर एक-एक नली निकलती है, जिसे मूत्र प्रणाली (यूरेटर) कहते हैं। किडनी जब रूधिर के दूषित तत्त्वों को छानकर मूत्र तैयार कर लेता है, तब यह मूत्र दोनों मूत्र प्रणालिकाओं (यूरेटर) द्वारा मूत्राशय (ब्लैडर) में चला जाता है, वहां से यह मूत्रमार्ग द्वारा बाहर निकल जाता है।

लक्षण : पेशाब में एल्बूमिल जाना, मूत्राशय की शोथ एवं जलन, मूत्र कृच्छता, पेशाब निकल जाना, पेशाब में खून आना, गुर्दे में पथरी, मूत्र ग्रन्थियों में रक्त संचय, किडनी का मूत्र निकालना बन्द कर देना, मूत्राशय केमरे होने पर भी मूत्र न निकाल सकना।

पेशाब के अन्त में घण्टों तीव्र जलन होना, पेशाब के रास्ते खून और पीब जाना, रुक-रुक कर बून्द-बून्द पेशाब होना रोगी दर्द से बैचेन हो जाता है। बायीं किडनी से कमर के बायें भाग से चलकर दर्द का नीचे की ओर पूरी टांग में तलुओं तक जाना, बुखार निरन्तर बने रहना, शरीर का वजन घटते जाना, नींद की कमी, गर्मी का सहन न होना।

एकान्त प्रिय चिड़चिड़ा स्वभाव उदास व निराश हाथ पैर गरम रहना, बैठकर पेशाब करने से मूत्र बूंद-बूंद आता है, खड़े होकर पेशाब करने से ठीक हो जाता है। पेशाब करने की तीव्र इच्छा, कठिनाई से आना, अपने आप निकल जाना, मूत्र मार्ग में संकोचन आदि। ऐसे लक्षणों के आधार पर होमियो चिकित्सक की सलाह लेकर चुनी हुई औषधि कुछ दिन धैर्यपूर्वक लेने से रोगी को रोग से छुटकारा मिल सकता है। ऐसे रोगियों को निराश होने की आवश्यकता नहीं है, होमियो औषधि रोग को जड़ से नष्ट करने की क्षमता रखती है।

प्रमुख औषधियाँ :-

१. टेरीबिन्थना - मूत्र ग्रन्थि में पेशाब भरे रहने के कारण भारीपन और दर्द अधिक मूत्र बंद होने पर यह औषधि अच्छा कार्य करती है।

२. लाइकोपोडियम - मूत्र का मूत्राशय से न निकाल सकना पेशाब की हाजत तो होना परन्तु बूंद-बूंद पेशाब होना।

३. कैन्थरिस - मूत्राशय में अधिक मरोड़ दर्द जलन होने पर।

४. वेलाडोना - मूत्र ग्रन्थि में रक्त संचय होने के कारण असहनीय दर्द होने पर। इस प्रकार लक्षणों के आधार नक्स, सल्फर, मर्ककौर एपोसाइनम, कैमोमिला, आर्निका आदि औषधि लेने से रोगी को अत्यधिक लाभ मिल सकता है।

परहेज - औषधि लेने के ३० मिनट पहले व वाद में किसी भी चीज का सेवन नहीं करना चाहिए। मसाले वाली चीजें, उत्तेजकचीजें, प्याज, लहसुन, गरिष्ठ भोजन, शराब व मांसाहारी खाना वर्जित है।

पथ्य - हल्का भोजन (सुपाच्य) दूध, कच्चे, नारियल का पानी अधिक पीना चाहिए। होमियोपैथी चिकित्सा में अन्य चिकित्सा प्रणालियों से सर्वोच्च स्थान ग्रहण किया है, यही कारण है कि आने वाला भविष्य होमियोपैथी का है।

पता - त्रिवेदी होमियो औषधालय, टाटीबंध, रायपुर (छ.ग.)

स्वतंत्रता दिवस के उपलक्ष्य पर

हार्दिक शुभकामनाएँ

मातृभूमि की पूजा करके, नफरत मत करिए।
अपनी धरती माँ से आप, बगावत मत करिए॥
स्वर्ग समान देश, निर्भय सबका जीवन है।
देशद्रोही बनकर, भयभीत मत करिए॥
कई त्याग, बलिदानों से देश आजाद हुआ।
सपने में भी देश को विभाजित मत करिए॥
समान अधिकार, गौरव, सुविधा सब तो है।
सुख चैन से जी कर भी शिकायत मत करिए॥
विश्व शान्ति के पुजारी, क्षमा के पहरेदार हम।
दुष्कर्मों से शीश झुके, ऐसा भारत मत करिए॥
गंगा जमना सभ्यता हमसे दुनिया सीखी है।
गौरवशाली भारत को अपमानित मत करिए॥
तुमको है सौगंध मिट्टी की, खुद को मत बेचिए।
बदनाम देश हो ऐसा कदाचित् मत करिए॥
मजहबों की दुकानों से खूब तिजारत कर लिए।
अब तो बाज आओ, फिर वही हरकत मत करिए॥
भारत माँ की संतान सारी, संग जीऐंगे मरेंगे।
अपनो से हो या गैरों से विश्वासघात मत करिए॥
आबरु वतन की बचाये रखिए।
एकता वतन की बनाये रखिए॥
यूँ तो चमकता है हिमालय मगर।
आसमान में तिरंगा लहराये रखिए॥
भेदभाव के काँटे जहाँ भी पलते हैं।
उन पेड़ों को जड़ से मिटाये रखिए॥
सुलगती आग दुश्मनी की दोस्तों।
बढ़ने से पहले बुझायें रखिए॥
अंधियारा चाहे हो जाये जितना
मन बाती में दीप जलाये रखिए॥
चाहे छूट जाये तुमसे कारवाँ मगर।
मंजिल की ओर कदम बढ़ाये रखिए॥
धन-दौलत, नहीं भाईचारा चाहिए।
यही होठों पर सदा दुआयें रखिए॥

- नरेश हमिलपुरकर
संपादक : राष्ट्रीय बुलेटिन
भासकरनगर, चिटगुप्पा, बीदर-कर्नाटक

कविता

ओ३म् प्राणमय तत्व

सर्व व्याप्त अदृश्य है, निराकार भगवान।
यदि होता साकार वह, सब लेते पहचान।
वेद सृष्टि आरम्भ हो, सत्य ज्ञान सद्ग्रन्थ।
सहज विश्व कल्याण का, एक अलौकिक पंथ।
श्रेष्ठ आर्यजन विश्व में, ऋषि-मुनि की सन्तान।
चारों वेदों में निहित, सत्य ज्ञान-विज्ञान।
आर्यों की जन्म स्थली, पावन आर्यावर्त।
उज्ज्वल छवि दिख जाएगी, आओ पोंछे गर्त।
वर्ण व्यवस्था जन्म से, कभी नहीं स्वीकार्य।
आर्य जाति के शत्रु दो, शूद्र ज्ञान, पाखण्ड।
बढ़े अन्ध विश्वास जब, जले समाज प्रचण्ड।
तीनों आदि अनन्त है, जीव प्रकृति भगवान।
जड़ चेतन का हेतु है, अणु-परमाणु घनत्व।
धन, पद अथवा ज्ञान से, भरे न मन का पात्र।
अक्षय, अमित अनन्त है, ओ३म् साधना मात्र।
वातावरण विशुद्ध हो, यदि घर-घर हो यज्ञ।
भारत होगा विश्व गुरु, जन-जन बने सुविज्ञ।

– गौरीशंकर वैश्य 'विनम्र' पता : ११७, आदिल नगर, डाकघर विकास नगर, लखनऊ २२६०२२

आदमी

आश्रय देने पर सिर चढ़ जाता है।
उपदेश देने पर मुड़कर बैठता है॥
आदर करने पर खुशामद समझता है।
उपकार करने पर अस्वीकार करता है॥
विश्वास करने पर हानि पहुंचाता है।
क्षमा करने पर दुर्बल समझता है॥
प्यार करने पर आघात करता है।
क्या यह चरित्र उचित है ?

सौजन्य : श्री नित्यानन्द वानप्रस्थी जी, रायगढ़

डी.ए.व्ही. नन्दिनी का गौरव

नन्दिनी (भिलाई) । डी.ए.व्ही. इस्पात पब्लिक स्कूल नन्दिनी माइन्स कक्षा ११वीं में अध्ययनरत **"सुभाष कुमार"** ने गत दिनों वनस्पति विज्ञान से जुड़ी एक पुस्तिका **"पादप संहिता"** का प्रणयन कर डी.ए.व्ही. नन्दिनी के छात्र-छात्राओं में **"प्रथम लेखक"** का सम्मान प्राप्त किया । इस ग्रन्थ में हमारे आसपास आमतौर पर उग जाने वाले पौधों एवं घासों का अद्‌भुत संग्रह है । खरपतवार जैसे लगने वाले इन घासों एवं पौधों में अनेक उपयोगिताएँ विद्यमान हैं, जिससे लोग अपरिचित हैं, गुणधर्म पता नहीं है । उन सभी बातों का विस्तार से वर्णन है इसमें तीन प्रकार के भूमि आँवला का भी दर्शन आपको होगा ।

इस उपलब्धि के लिए माइन्स के डी.जी.एम. श्री उल्लास कुमार ने प्रसन्नता प्रकट की है साथ ही डी.ए.व्ही. छ.ग. प्रक्षेत्र के निदेशक श्री प्रशान्त कुमार सर ने बधाई भेजी है। विद्यालय के प्राचार्य श्री राजशेखर पालीवाल एवं उनकी टीम ने छात्र के उज्जवल भविष्य की मंगलकामना की है।

संवाददाता : प्राचार्य, डी.ए.वी.प.स्कूल, नन्दिनी

-: सूचना :-

प्रदेस्थ समस्त आर्यसमाजों को सूचित किया जाता है कि आगामी ०७ अगस्त २०१७ श्रावणी उपाकर्म (रक्षाबंधन) से लेकर जन्माष्टमी १५ अगस्त २०१७ पर्यन्त वेद प्रचार सप्ताह उत्साह- पूर्वक बड़ी धूमधाम से मनाएँ ।

मंत्री, छत्तीसगढ़ प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा

समाचार प्रवाह

श्रद्धाञ्जलि

बिलासपुर । विनोबा नगर बिलासपुर (छ.ग.) के निवासी श्री मुकुन्द माधव जी के सुपुत्र श्री सौरभ गुप्ता का ३६ वर्ष की आयु में दि. २६-६-१७ को आकस्मिक निधन हो गया । जिनका अंतिम संस्कार दि. २७-६-१७ वैदिक रीति से किया गया । वे राम माधव, सुधीर गुप्ता, गोविंद गुप्ता, सौमित्र गुप्ता, शशि माधव, प्रमोद गुप्ता के भतीजे थे। इनके परिवार के हर सदस्य ने देहदान या अंगदान का संकल्प ले रखा है। गुप्ता परिवार में देहदान, नेत्रदान की परम्परा की शुरुआत वर्ष २०१० में विक्रमादित्य आर्य जी के मृत्यु के बाद नेत्रदान से शुरु हुई, फिर २०१५ में मारुती प्रसाद गुप्ता जी की मृत्यु हो गई इनकी आखिरी इच्छा पूर्ण करने के लिए देहदान किया । इसी परिवार के सौरभ गुप्ता पूणे में इंजीनियर थे। इन्होने अपने दादा के देहदान से प्रेरित होकर दान की परम्परा को निभाते हुए अपने नेत्रदान करके नेत्रहीनों का जीवन रोशन किया । छत्तीसगढ़ प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा एवं अग्निदूत परिवार श्रद्धा सुमन अर्पित करती है। ***संवाददाता : आर्यसमाज गोंड़पारा बिलासपुर***

भारत गौरव

सदा सुरक्षित रहे हमारा ।
न्यायशील विधान ॥
विश्व सभ्यता का गौरव है ।
भारत वर्ष - महान ॥
उन्नति पथ के अमर सेनानी ।
सत् तेरी पहचान ॥
मेहनत से मिलती है मंजिल ।
मेहनत करो जवान ॥
आजादी का परम पर्व है ।
जागो हिन्दुस्तान ॥

विश्व-संस्कृत-दिवस (श्रावणी पूर्णिमा)

प्रत्येक कार्य का आरम्भ लघु होता है फिर वह महान् होता जाता है। इस दृष्टि से विश्व संस्कृत दिवस का लघु रुप व्यक्ति संस्कृत दिवस, फिर ग्राम-संस्कृत दिवस, जिला संस्कृत दिवस, प्रान्त संस्कृत दिवस, राष्ट्र संस्कृत दिवस अन्त में विश्व संस्कृत दिवस का क्रम होता है। किन्तु यह उतावलापन क्यों ? लगता है कि संस्कृत बोलने में झिझक महसूस हुई इसलिए विश्व को संस्कृतज्ञ लोग अपने साथ समेटने के लिए विश्व संस्कृत दिवस मनाया जा रहा है। यह तो बिलकुल सत्य है, **"एकोऽहं बहुस्याम्"** न्याय से अकेला संस्कृत चिन्तक, वक्ता, श्रोता होने से काम नहीं चलने वाला, व्यक्ति, ग्राम, जिला, प्रान्त, राष्ट्र और विश्व की ओर अग्रसर होना पड़ेगा, रेखाचित्र बनाकर उसमें विविधाकृति बनाकर रङ्ग बनाना पड़ेगा। श्रवणा नक्षत्र जिस पौर्णमासी को पड़े वह **"श्रावणी पूर्णिमा"** है। नक्षत्र का नामकरण परमात्मा ने वेदों के श्रवणार्थ ही किया है। श्रावण मास से माघ मास तक वेदों का स्वाध्याय जोरों पर किया जाता रहा है। इसीलिए बहुधा चिन्तन करके श्रावणी पूर्णिमा को विश्व संस्कृत दिवस घोषित किया गया है।

- सम्पादक

अग्निदूत के ग्राहक सदस्यों की सेवा में

छत्तीसगढ़ प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा के मासिक मुख पत्र **'अग्निदूत'** के समस्त ग्राहक सदस्यों से निवेदन है कि अपना वार्षिक शुल्क १००/- यथाशीघ्र सभा कार्यालय को भेज दें, जिससे कि उन्हें नियमित रूप से 'अग्निदूत' भेजा जाता रहे। जिन सदस्यों के शुल्क तीन वर्षों से अधिक बकाया हो, उनसे निवेदन है कि वे अपना दसवर्षीय शुल्क ८००/- रु. भेजें। इस कार्य को यथाशीघ्र प्राथमिकता से करें। अन्यथा **इस मास से अग्निदूत भेजना बंद कर दिया जायेगा।** पत्र व्यवहार में अपना सदस्य संख्या तथा पूरा पता पिन कोड सहित अवश्य लिखें। **सभा का भारतीय स्टेट बैंक दुर्ग शाखा में सेविंग एकाऊन्ट नं. : 32914130515, आई.एफ.एस.सी. SBIN0009075 कोड नं. अथवा देना बैंक दुर्ग शाखा में सेविंग एकाऊन्ट नं. 107810002857 आई.एफ.एस.सी. BKDN0821078 है, जिसमें आप किसी भी भारतीय स्टेट बैंक/देना बैंक की शाखा से आनलाईन शुल्क जमा कर सभा कार्यालय के दूरभाष नं. 0788-4030972 द्वारा सूचित करते हुए अलग से पत्र लिखकर अवगत कर सकते हैं। अग्निदूत मासिक पत्रिका के सम्बन्ध में कोई भी शिकायत हो तो कृपया श्रीनारायण कौशिक को चलभाष नं. 9770368613 में सम्पर्क कर सकते हैं।**

- दीनानाथ वर्मा, मंत्री मो. 9826363578

कार्यालय पता : 'अग्निदूत', दयानन्द परिसर, आर्यनगर, दुर्ग (छ.ग.) 491001, फोन : 0788-4030973

महर्षि दयानन्द एवं सत्यार्थ प्रकाश

जिसने बदली दिशा जगत की धरती और आकाश की।
जय बोलो उस दयाननद की जय सत्यार्थ प्रकाश की॥

केरल से कश्मीर तलक जब घोर अँधेरा छाया था।
रूढ़ि अन्ध विश्वास अविद्या ने भ्रमजाल बिछाया था॥
जकड़ा हुआ स्वदेश दासता में व्याकुल घबराया था।
मतवादों ने बीज द्वेष का भारत में बिखराया था॥
कहीं न पड़ती थी दिखलायी ज्योति दूर या पास की।
ध्वनि कराहती सी लगती थी मानव के हर श्वांस की॥१॥

जाति पांति मजहब के झगड़े निशदिन होते रहते थे।
विपदा के आँसू भारत माँ की आँखों से बहते थे॥
मातृशक्ति और शूद्र उपेक्षा के शिकार बन रहते थे।
शोषण अत्याचार और अन्याय सभी जन सहते थे॥
रोता अम्बर रोती धरती लीला देख विनाश की।
कहीं न कोई किरण दिखायी पड़ती थी कुछ आश की॥२॥

तभी प्रान्त गुजरात मध्य टंकारा नामक ग्राम में।
तिमिर भेदती हुयी अवतरित किरन एक निज धाम में॥
बिखरा था प्रकाश जिसका हर एक नगर या ग्राम में।
कीर्ति पताका जिसकी फहरायी थी चारोधाम में॥
दिव्य ज्योति प्रगटी थी जिसके उज्ज्वल धवल प्रकास की।
किरनें फूटीं मानवता के मन में फिर कुछ आश की॥३॥

उसी किरण को सभी जानते दयानन्द के नाम से।
मानवता का मान बढ़ाया था जिसने निज काम से॥
कर्मचारी वह रहा न उसका नाता था विश्राम से।
उसने तो सम्बन्ध बनाया सत्य और शिवधाम से॥
आशा बन कर आया था वह दुःखिया दीन निराश की।
ज्योति जगा दी जिसने जन जन के मन में विश्वास की॥४॥

उसके द्वारा रचित ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश महान है।
जिसमें भरा हुआ वेदों का ज्ञान और विज्ञान है॥
मानव को सम्पूर्ण मनुज बनने का जहाँ विधान है।
मानवता के सब रोगों का जिसमें भरा निदान है॥
अक्षर अक्षर ज्ञान ज्योति सी जिसके सत्य प्रकाश की।
जिसने पूर्ति किया मानवता के मन की हर आश की॥५॥

मानव से मानव की दूरी जिसमें गयी मिटायी है।
भेदभाव की दीवारें सब जिसमें गयी गिरायी हैं॥
छुआछूत का भूत भगाने की विधि गयी बतायी है।
जाति तोड़ कर वर्ण व्यवस्था फिर से गयी बनायी है॥
हीन भावना मिटी हृदय से स्वामी सेवक दास की।
उपजा नवल प्रकाश मिली निधि ईश्वर के विश्वास की॥६॥

पाखण्डों के गढ़ को तोड़ा रूढ़िवाद का नाश किया।
सत्यधर्म की परिभाषा हित था सत्यार्थ प्रकाश दिया॥
व्यक्तिवाद अवतारवाद गुरुडम का पूर्ण विनाश किया।
वेद विहित चिर प्रगति पंथ का समुचित सतत् विकास किया॥
वह सत्यार्थ प्रकाश की जिसने गति बदली इतिहास की।
स्वतंत्रता का रखवाला वह सभी आम या खास की॥७॥

युग परिवर्तन यदि लाना है तो सत्यार्थ प्रकाश पढ़ो।
और सफलता की मंजिल पर निर्भय होकर नित्य चढ़ो॥
समता शान्ति प्रगति के पथ पर निर्भय होकर नित्य बढ़ो।
धर्म अर्थ और काम के मोक्ष के सोपानों पर अभय चढ़ो॥
पूर्ति बन गया अमर ग्रंथ यह मानव के हर आश की।
"साथी" अमर कहानी है यह इस युग के इतिहास की॥८॥

जिसने बदली दिशा जगत की धरती और आकाश की।
जय बोलो ऋषिदयानन्द की जय सत्यार्थ प्रकाश की॥

रचनाकार : परमात्मा प्रसाद शुक्ल 'साथी' पवन विहार कालोनी, न्यू राजेन्द्र नगर, रायपुर

CHH-HIN/2006/17407 अगस्त 2017 डाक पंजी. छ.ग./दुर्ग संभाग / 99/2015-17

स... मुद्रक आचार्य अंशुदेव आर्य द्वारा छत्तीसगढ़ प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा, दयानन्द परिसर, आर्यनगर, दुर्ग के वैदिक मुद्रणालय से छपवाकर प्रकाशित किया गया।
प्रेषक : "अग्निदूत", हिन्दी मासिक पत्रिका, कार्यालय, छ.ग. प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा, दयानन्द परिसर, आर्यनगर, दुर्ग (छ.ग.) 491001